ISSN 2230 – 9209
वर्ष 96 1148 वाँ अंक

# वीणा

⌘ जून 2023 ⌘ मूल्य 50 रु.

## शताब्दी की ओर अग्रसर

श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर का मुखपत्र

वर्ष 1927 से निरंतर प्रकाशित देश की एकमात्र हिंदी मासिक पत्रिका

# वीणा

*तेरे गुन-गौरव सुनाऊँ अजु भूतल पै, यातें मातु शारदे सुधार निज 'वीणा' तू*

**अरविंद जवलेकर**
**पदेन संपादक**

**सदाशिव कौतुक**
**प्रबंध संपादक**

**राकेश शर्मा**
**संपादक**

**वर्ष : 96, अंक : 06** **आषाढ़ 2080** **जून 2023**

**शुल्क**

| | |
|---|---|
| एक प्रति | 50 रु. |
| वार्षिक | 500 रु. |
| द्विवार्षिक | 1000 रु. |
| आजीवन | 5000 रु. |
| संस्थाओं हेतु (10 वर्षीय) | 5500 रु. |
| विदेशों में वार्षिक | 50 डॉलर |

**: संपर्क :**
**श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति,**
**11, रवींद्रनाथ टैगोर मार्ग, इंदौर 452001 (म.प्र.)**
**दूरभाष : 0731.4998871**
**इंटरनेट पर वीणा–** www.veenapatrika.com
E-mail : veenamasikpatrika@yahoo.co.in

- वीणा से संबंधित किसी भी जानकारी के लिए कृपया वीणा के ईमेल पर मेल करें अथवा दूरभाष पर कार्यालयीन समय दोपहर 12.00 से संध्या 7.00 बजे तक सम्पर्क करें।
- वीणा अद्यतन रूप से www.veenapatrika.com पर ऑनलाइन भी उपलब्ध है।
- प्रकाशित रचनाओं के विचारों से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति, इंदौर की अनुमति आवश्यक है।
- 'वीणा' से संबंधित समस्त विवाद इंदौर न्यायालय के अधीन होगा।

संपादकीय

# सनातनता और आधुनिकता साथ-साथ

समाज में कुछ रटंतू तोते रात-दिन एक ही रट लगाए रहते हैं कि यह परिवर्तन का युग है, तकनीक के प्रभाव का समय है, यह ग्लोबलाइजेशन का दौर है और विकास की आंधी का समय है। इसमें असत्य कुछ भी नहीं, वे सही कह रहे हैं। यह समय इन विशेषताओं से भरा हुआ है, भी। मगर इन लोगों की आंतरिक मान्यताएं अश्लीलता की हद तक अशोभनीय भी हैं। कौन-सी तकनीक हमें अशुद्ध भाषा के प्रयोग के लिए बाध्य करती है? क्या तकनीक के युग में व्याकरण सम्मत सही किंतु सरल भाषा नहीं लिखी जा सकती? फेसबुक, ब्लाग, इंस्टाग्राम, एस.एम.एस., व्हाट्सएप्प पेज, ई-मैग्जीन, ईबुक आदि पर हम सब लिखते और पढ़ते हैं। ये तकनीक के अलग-अलग रूप हैं। लिखते समय शुद्धता की मांग करना, आखिर आदिम होना क्यों माना जा रहा है? शुद्ध और सरल भाषा लिखकर भी आधुनिक रहा जा सकता है। आधुनिकता को अपनी भाषा और संस्कृति के साथ स्वीकार करना चाहिए।

मनुष्य की मेधा ने निरंतर अथक परिश्रम से इन तकनीकी माध्यमों को बनाया है। जब भी नई तकनीक आती है वह पुरानी व्यवस्था को ध्वस्त करती है। आदिम समय से यही रीति चलती आ रही है और इस क्रम में मौजूदा तकनीकें कोई अंतिम नहीं हैं। भविष्य में भी मनुष्य कुछ नया अविष्कार करेगा और मौजूदा तकनीकें प्रभावहीन होगीं और इसी भांति मानवता अग्रसर होती रहती है। लेकिन भाषा में रचा गया हमारा समकाल सदा के लिए पीढ़ियों को प्रभावित करता रहेगा। इसलिए भाषा के स्वरूप को प्रयासपूर्वक बिगाड़ने का अधिकार किसी को भी नहीं है।

तकनीकें मनुष्य के लिए बनीं हैं, मनुष्य तकनीक के लिए नहीं बना है। हमारे समकाल के कुछ छद्म बुद्धिजीवियों का द्वंद्व कुछ दूसरा है, इसे आप द्वंद्व न भी कहें, बल्कि एक सुनियोजित षडयंत्र युक्त चालाकी कह सकते हैं। ये लोग व्याकरण पढ़ते नहीं, अध्ययन लगभग इनके जीवन से नदारद है, भाषा की बारीकियां, कीमियां, सीखने का उद्यम नहीं करते, कहावतें, मुहावरों से संबंध तोड़ लिया हैं, सांस्कृतिक लयबद्धता की कोई जानकारी रखने का प्रयास है ही नहीं। संस्कृति की मूल आत्मा का बोध भी नहीं है। इस सबके बाद अगर कुछ बचता है तो वह है, केवल कुतर्क। लेकिन कुतर्क पर सवार जीवन लंबा नहीं होता। जीवन की असली जमीन यथार्थ हैं और इसके अलावा कोई विकल्प प्रकृति हमें नहीं देती है। जीवन और जगत का ताना-बाना इस तरह बुना गया है कि इसमें छेड़छाड़ करने की अनुमति किसी को भी नहीं है। मगर मनुष्य है कि हार मानने को तैयार नहीं है और कदाचित यही जिजीविषा एक अद्भुत बात आदमी के पास है। इसी के सहारे हमने प्रकृति पर विजयें पाई हैं और भविष्य में भी

पायेंगे। यह एक अनवरत क्रम है।

तकनीक के तुर्रे से धमकाने वाले और प्रगतिशीलता के छद्म समर्थक लोगों का मानना है कि इस 'क्लिक' और 'टच' के समय में जब भाव संप्रेषण 'इमोजी' के माध्यम से हो रहा है तब ऐसे दौर में भाषा, व्याकरण, शब्द संरचना, मुहावरे, लोकोक्तियों और वाक्य विन्यास को समझने और समझाने की क्या आवश्यकता है? इन कुतर्कियों को कौन समझाएं कि व्याकरण, ध्वनि सिद्धांत, शब्द संरचना, भाषा विज्ञान का भी महत्व है। इनकी कोई भी जानकारी न रखने वालों को यह कैसे समझाया जाए कि भाषा का काम केवल भाव संप्रेषण और समाचार संप्रेषण करना भर नहीं है। भाषा किसी भी राष्ट्र की अस्मिता की प्रतीक होती है। इमोजी आदि के सहारे लेखनकर्म नहीं हो सकता। अभी इनका कोई अस्तित्व सर्जना में नहीं है। देश में सर्जना की सबसे बड़ी प्रतिभा तुलसीदास ने कहा कि 'अरथ अमित अति आखर थोरे', अर्थात कहने के लिए बहुत है लेकिन अक्षर बहुत कम हैं। यहां कुतर्की अगर ये कहें कि भाषा को स्वच्छंद छोड़ दो, नियमों की चिंता न करो। शब्द व्याकरण सम्मत न भी हों तो क्या? आखिर नई पीढ़ी हिंदी में जो कुछ भी कहे, उसका स्वागत करो। स्वागत अवश्य करना चाहिए, मगर संयम के साथ। नई या पुरानी पीढ़ी के बीच भेद व्याकरण सम्मत भाषा को निर्वासित करके नहीं किया जा सकता। किसी भी सूरत में भाषागत स्वच्छंदता भाषा और संस्कृति दोनों को हानि ही पहुंचायेगी।

हम, आधुनिकता और तकनीक की दुहाई देने वाले तथाकथित बुद्धजीवियों से पूछना चाहते हैं कि उनका यह कुतर्क समझ से परे है कि हमारे लोग अगर हिंदी लेखन में अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग करते हैं तो करने दो, यही समय की मांग है। मगर ये लोग यह क्यों नहीं बताते कि अंग्रेजी के पत्रकार अपने लेखन में संस्कृत, हिंदी समेत भारतीय भाषाओं या विश्व की अन्य भाषाओं की शब्दावली का उपयोग क्यों नहीं करते? आधुनिकता का बुखार, आखिर हिंदी की पत्रकारिता पर ही क्यों चढ़ता है? यह ठीक है कि जब-जब संस्कृतियां, भाषाएं एक-दूसरे के समीप आती हैं, तब-तब भाषा, भूषा और भोजन के रूप रंग बदलते रहते है। भाषा के इसी प्रभाव पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था कि 'संस्कृत का पंडित ऊपर से आधा नंगा रहता है और अंग्रेजी की मेम नीचे से आधी नंगी रहती है।' तो खैर, ये मानस पर भाषाओं का प्रभाव है। इस तथ्य पर डॉ. राममनोहर लोहिया ने अपने सुचिंतित निबंध 'भाषा, भूषा और भोजन' में विस्तार से की है।

आज-कल एक प्रचलन है कि हिंदी के प्रचलित शब्दों की हत्या कर दो और आधुनिकता के नाम पर अंग्रेजी शब्दों को स्थान दे दो। यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि हमारे राष्ट्रीय पुरखों ने यह भाषा नीति अपनायी थी कि जिन संज्ञाओं, भावों, विचारों को प्रकट करने के लिए हिंदी शब्द न हों, उनके लिए भारत की अन्य भाषाओं, बोलियों से शब्द उधार लिए जाएं। इससे हमारा सांस्कृतिक ताना-बाना अक्षुण्ण बना रहेगा। ये सब भाषाएं सांस्कृतिक रूप में समानधर्मा हैं। इस मार्ग पर राष्ट्र आगे बढ़ा भी। अचानक कुछ तथाकथित बुद्धिजीवियों ने इस रीति को ही तिरस्कृत करना आरंभ कर दिया। वे तो हिंदी समेत सभी भारतीय भाषाओं के प्रचलित शब्दों की जबरन हत्या करके उनके स्थान पर अंग्रेजी के शब्द प्रयोग कर रहे हैं। यह बात प्रारंभ में तो धीमी गति से चलायी गयी, मगर आजकल इसमें

अचानक बहुत वृद्धि हुई है। इतनी कि इस भाषा को 'हिंगलिश' कहा जाने लगा है। महात्मा कबीर के शब्दों में 'भाषा बहता नीर है' यह तथ्य सर्वविदित है और अभी तक का इतिहास यही बताता है। पर शायद किसी भी युग में भाषा के साथ यह अन्याय नहीं हुआ था जैसा हम आज अपनी स्थापित, परिमार्जित भाषाओं के साथ कर रहे है। प्रारंभ में मीडिया ने ही नई भाषा का रूप रंग गढ़ा, उसे आधुनिक संदर्भों के योग्य बनाया। मगर आज वहीं माध्यम इसे कुरूप बना रहे हैं।

क्या यह सच नहीं है कि आज के अधिकांश खबरनवीसों के पास हिंदी की पर्याप्त शब्दावली नहीं है? क्या यह सच नहीं कि इनके पास भाषा के व्याकरण और वाक्य संरचना की गहरी जानकारी का अभाव है? भाषा ही संस्कृति है, यह तथ्य लेखकों, पत्रकारों को हमेशा याद रखनी चाहिए। भाषा को मार कर हम संस्कृति की रक्षा नहीं कर सकते। यह शिक्षा हमारे पुरखों ने ही दी है काश! हम लोग भी अपनी नई पीढ़ी को बाबा-दादाओं के इस अनुभव को बता सकें। उन्हें आधुनिक भी बनने दें मगर भाषा और संस्कृति के सूत्र भी मजबूती से पकड़े रहने दे। यही सूत्र उनके जीवन को सहज बनाए रखेंगे। भारतीयता की पहचान भी बची रहेगी। विश्वग्राम में हमारी पृथक पहचान के मान बिंदु हमारी भाषाएं ही हैं। इन्हीं पर गर्व करते हुए हम सनातन और अधुनातन दोनों बने रह सकते है। जो सनातन बना रहा है, इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि वह हर समकाल में अधुनातन को अंगीकृत करता ही रहा होगा।

जो अपने समकाल के साथ नहीं चला वह नष्ट हुआ है। प्रकृति का यही अकाट्य सिद्धांत है। भारतीय धर्मग्रंथों की युग के अनुरूप व्याख्याएं होती रही हैं। हमने पुरानी मान्यताओं का खंडन भी किया और मंडन भी करते आए। इसी प्रक्रिया से हम अपने आपको अधुनातन बनाते आए हैं। इसमें हमारी भाषाओं का योगदान गहरा है। ये भाषाएं बची रहें ताकि यह विमर्श भी अक्षुण्ण बना रहे। संसार में हर वस्तु परिवर्तनशील है। वस्तु ही क्यों यह संसार हर क्षण परिवर्तनशील है, तब भला कोई अतीत हुए समय की स्मृतियों को छाती से लगाकर कैसे बचा रह सकता है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि हम अतीत को भुला दें। अतीत की स्मृतियां हमारी शक्ति का प्रतिष्ठान भी है। कई समकालों का रूप रंग केवल अतीत ने ही सम्हाला है। समय के टुकड़े नहीं किए जा सकते हैं। उसकी सत्ता अखंड है। वैसे ही जीवन की समूची संरचना अखंड है। इन्हीं भावभूमियों में हमारे पुरखों ने अद्वैत जैसा अनूठा शब्द रचा था। इसका गंभीर और स्थायी अर्थ यही है कि दो नहीं मगर एक ही होने पर विशेष बल है। प्रपौत्र के लहू में, उसके बाबा नवीन होकर जीवित हैं। पिता अपने पुत्र में विद्यमान है। गुणसूत्र के जो नियम जीवन पर लागू हैं, वे ही और वैसे ही नियम वर्तमान, अतीत और भविष्य पर भी लागू होते हैं और यही सर्जना में उतरना चाहिए। संस्कृति, सभ्यता और भाषा का नाता भी ऐसा ही है।

**राकेश शर्मा**

## इस अंक में ...


- **संपादकीय** 04
- **आलेख**
  - स्वातंत्र्यवीर सावरकर जी की अंडमान जेल कथा 'मेरा आजन्म कारावास' 08
    चैतन्य त्रिवेदी
  - प्रतिनिधि हिंदी उपन्यासों के परिदृश्य में किन्नर व्यथा 14
    प्रवीण कुमार सहगल
  - ओडिआ-हिंदी साहित्य तुलनात्मक अध्ययन 21
    राजेंद्र सिंह गहलौत
  - हिंदी गद्य की सत्ता, स्वायत्तता और सामर्थ्य 24
    कृष्ण बिहारी पाठक
  - यंत्र-युग पर व्यंग्य की बहुकोणीय धार : मेघदूत का टी.ए. बिल 29
    डॉ. अशोक कुमार मंगलेश
  - हिंदी कहानियों में तृतीय लिंगी अस्तित्व की तलाश 33
    डॉ. रंजित एम्
  - बचपन के दिन (डायरी, अंतिम भाग) 36
    अशोक भाटिया
- **साक्षात्कार**
  - जमाना मेरे साथ गाए तो गाए 42
    बालस्वरूप राही से सफलता 'सरोज' की बातचीत
- **व्यंग्य**
  - मैं कुछ सोच रहा हूं... 47
    सुरेश मिश्र 'विचित्र'
- **लघुकथा**
  - आंसू 41
    अंतरा करवड़े
- **कहानी**
  - संघर्ष ही जीवन है 49
    सुषमा मुनींद्र
  - सौदा-ए-खाम 55
    मूल लेखक : प्रेमचंद (अनुवाद : जावेद आलम)
- **आवरण चित्र के बारे में...**
  - मिलिंद देशपांडे 54
- **ललित निबंध**
  - राजा तो नंगा है 59
    गोविंद गुंजन
- **संस्मरण**
  - वे दिन और बातें : सरगुजा में डॉ. दीपक जी के साथ बिताये क्षण 63
    श्यामसुंदर दुबे
  - अनुपम अभयारण्य के अनन्य रचनाकार अभय जी 67
    डॉ. देवेंद्र शर्मा
- **सर्जना के आयाम**
  - कविता व्याकरण पर अंत:करण का अनुशासन है 69
    मुकेश निर्विकार
- **गीत/कविता/गजल/दोहे**
  - कविता का होना 48
    दुर्गाप्रसाद झाला
  - गांव से संबंध अपना 66
    प्रभु त्रिवेदी
  - कविताएं 73
    ओम ठाकुर
  - धरती के हाथों / झरने मंत्र उकेरे 75
    अशोक गीते
  - सुरमई सांझ / बर्फ और आंच 76
    हरदान हर्ष
  - कितना जरूरी है एक पिता होना 77
    अरविंद यादव
  - छंद रोशनी के / दिन फिर गए 78
    अशोक 'आनन'
  - कविताएं 79
    अमेय कांत
  - हार-जीत का प्रश्न नहीं है 84
    सुरेश कुशवाहा 'तन्मय'
- **पुस्तक चर्चा**
  - इतिहास में ताक-झांक : मिर्जा गालिब की जासूसी 80
    महेश दुबे
  - दिये की तरह एक उम्मीद 81
    डॉ. शशिकला पांडेय
- **पुस्तक समीक्षा** 85
- **समिति समाचार** 93

आलेख

# स्वातंत्र्यवीर सावरकर की अंडमान जेल कथा 'मेरा आजन्म कारावास'

चैतन्य त्रिवेदी

सुपरिचित लेखक चैतन्य त्रिवेदी का यह शोधपरक आलेख बहुत महत्वपूर्ण है। सावरकर जी के संबंध में प्रचारित अनेक गलत अवधारणाओं का खंडन करता है और वास्तविक स्वरूप हमारे सामने रखता है। – सं.

बाल गंगाधर तिलक के अनुमोदन पर श्याम जी कृष्ण वर्मा छात्रवृत्ति प्राप्त हुई और बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए सावरकर 1906 में लंदन रवाना हुए। उस समय उनकी उम्र 23 वर्ष थी। उसके पूर्व 1904 में उनके अग्रज गणेश सावरकर और स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने 'अभिनव भारत' संगठन की स्थापना की थी। श्याम जी कृष्ण वर्मा पहले भारतीय थे जिन्हें ऑक्सफोर्ड से एम.ए. और बार-एट-लॉ की उपाधि प्राप्त हुई थी। पुणे में उनके संस्कृत भाषण से प्रभावित हो मोनियर विलियम ने उन्हें ऑक्सफोर्ड में संस्कृत का सहायक प्रोफेसर बना दिया था। जो सावरकर बार-एट-लॉ करने गए थे, इन्हीं श्यामजी की प्रेरणा से क्रांतिकारी गतिविधियों से संलग्न हो गए। श्यामजी ने वहीं इंडियन सोशियोलॉजिस्ट पत्र निकाला जो आगे चलकर जेनेवा से भी प्रकाशित होने लगा। मार्च 1930 में जेनेवा (ऑस्ट्रिया) के एक अस्पताल में ही उनका निधन हो गया। वहीं उनकी अंत्येष्टि हुई। 2003 में तत्कालीन गुजरात सरकार के प्रयत्नों में उनकी अस्थियां भारत पहुंची।

लेकिन युवा सावरकर ने अपनी सक्रियता में कोई कमी नहीं आने दी, मदनलाल धींगरा भी इंडिया हाउस में आए ही थे। सावरकर की प्रेरणा से मदनलाल धींगरा ने लार्ड कर्जन वाइली की जुलाई 1909 में लंदन के एक हॉल में हत्या कर दी। यह दुनिया पर राज करने वाले ब्रिटेन के मुंह पर तमाचा था। मदनलाल धींगरा को फांसी दे दी गई। सावरकर की गतिविधियां लंदन में वैसे ही संदिग्ध होती जा रही थी। सावरकर ने वहीं 'वार ऑफ इंडिपेडेंस' 1857 की रचना की थी, मूलत: पहले यह मराठी में लिखा गया था। प्रकाशन के पूर्व इसे जब्त कर लिया लेकिन 1909 हालैंड में यह प्रथमत: प्रकाशित हुआ। इसका द्वितीय संस्करण लाला हरदयाल ने गदर पार्टी की ओर से अमेरिका में प्रकाशित किया, तीसरा संस्करण अमर शहीद सरदार भगतसिंह द्वारा और चतुर्थ संस्करण नेताजी सुभाषचंद्र बोस द्वारा सुदूर पूर्व में प्रकाशित करवाया गया। फिर इस पुस्तक का अनुवाद हिंदी, पंजाबी एवं तमिल में हुआ। उसकी मूल पांडुलिपि मेडम भीकाजी कामा के पास पैरिस में सुरक्षित रही, इसके बाद अभिनव भारत के डॉ. क्यूतिन्हों को प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान सौंपी गई, जो उनके पास चालीस वर्ष सुरक्षित रही। 1947 में स्वतंत्रता के उपरांत इस मूलप्रति को रामलाल वाजपेयी और डॉ. मुंजे को दे दिया गया, अंतत: यह सावरकर जी के पास वापस पहुंच गई।

1910 में सावरकर लंदन में गिरफ्तार हो गए। 8 जुलाई को मार्सेलेस जहाज से भारत रवाना किया, बंदी सावरकर ने फ्रांस के निकट शौचालय की कांच तोड़ समुद्र में छलांग लगा दी। तैरते सावरकर पर गोलियां भी दागी गई लेकिन वे तैरते हुए तट पर जा लगे, उन्हें लगा फ्रांस उन्हें राजनीतिक शरण दे देगा लेकिन वहां उन्हें पकड़ लिया गया। हेग की अदालत ने 30 जनवरी, 1911 को अंग्रेज जज ने दो आजन्म कारावास यानी पचास वर्ष की सख्त सजा सुना दी।

सावरकर मुंबई लाए गए। वहां से डोंगरी जेल। जेल की पहली सुबह कैदी वाले कपड़ों में हुई। सावरकर अपनी आजन्म कारावास पुस्तक में लिखते हैं, 'मैंने नित्य सुबह योगसूत्र का पाठ आरंभ कर दिया।' डोंगरी में सावरकर ने अपने अप्रतिम नायक गुरु गोविंद सिंह के बारे में पहले दिन ही दस-बारह कविताएं लिख कर, कंठस्थ कर लीं। डोंगरी के बाद उन्हें भायखला कारागृह ले जाया गया। वहां उन्हें बाइबिल दी गई। जिसका उन्होंने मनोयोग से अध्ययन किया। सावरकर आगे लिखते हैं- 'वहां मैंने यह आवेदन दिया कि मेरी दोनों सजाएं एक साथ चला कर पच्चीस वर्ष में समाप्त की जाए, वह भी कानूनन आजीवन कारावास से ज्यादा ही ठहरती है, लेकिन वह आवेदन स्वीकार नहीं किया गया। मुझे बताया गया आपकी रिहाई का वर्ष गले में लटके बिल्ले पर अंकित है- 'यानी वर्ष 1960'। उन्हें बाद में पता चला भायखला जेल में ही उनका छोटा भाई नारायण भी बंदी है, लार्ड मिंटो पर फेंके गए बम प्रकरण में। फिर सावरकर ठाणे जेल लाए गए, वहां से अंडमान जाना था। अंडमान जाने के पूर्व कैदियों को छह माह विभिन्न जेलों में रख कठोर कामों के लिए तैयार किया जाता है। एक तरह से यह पूर्वाभ्यास था, सख्त सजा क्या होती है इसका। 'एक सुबह पैरों में बेड़ी, हथकड़ी के साथ मोटर में मुझे रेलवे स्टेशन पहुंचा दिया गया।' सावरकर ट्रेन से मद्रास ले जाए गए, फिर वहां से बोट पर। जलयान महाराजा की तल मंजिल पर पच्चीस की जगह पचास कैदी ठूंसे गए थे। सावरकर के ही शब्दों में, 'मैं उस दुर्गंध युक्त तल मंजिल की जगह पर खड़े-खड़े विचारों में खोया हुआ था, तभी महाराजा जलयान की सीटियां सुनाई दी, तट छूट गया। जलयान धीरे-धीरे अनंत समुद्र में असंख्य लहरों के बीच उतर गया। जहाज समुद्र में तैरता आगे बढ़ता जा रहा था, सावरकर की आंखों में 1906 का वह दिन डबडबा उठा, जब परिवार के सभी लोग मेरी पत्नी भी मुझे खुशी हो, इस आस-विश्वास से विदा कर रहे थे कि 'मैं इंग्लैंड में पढ़-लिख कर बैरिस्टर बन कर लौटूंगा और सबको सुखी करूंगा।'

चार जुलाई, 1911 जलयान सेल्यूलर जेल के तट पर खड़ा था। 'चलिए अंडमान आ गया है।' घने जंगलों से घिरा भव्य भवन सेल्यूलर जेल। 1887 में बनना शुरू हुई, 1906 तक पूर्ण हुई। इसमें 15*8 फीट की 698 कोठरियां हैं, उसके बाद तीन मीटर पर रोशनदान, यानी वहां पहुंचने की जुगाड़ करना किसी भी कैदी के लिए संभव नहीं था। यहां सबसे पहला जत्था 1857 के स्वातंत्र्य समर के सैकड़ों कैदियों को लाया था, बहुसंख्य उनमें से मारे गए, कइयों को फांसी पर लटका दिया गया था। यह 1858 की बात है। तब जेल नहीं बनी थी। सावरकर ने अंडमान की भौगोलिक जानकारी पहले से ले ली थी।

इस जेल का जेलर कोई आयरिश बारी था। उसकी क्रूरता के किस्सों से घना जंगल चीत्कारों से गुंजायमान होता रहता था। सारे कैदी अपने-अपने बिछौने उठाए। विशाल द्वार के सम्मुख खड़े थे। हाथी की चिंघाड़ की तरह विशाल दरवाजा चरमराते हुए धीरे-धीरे पीछे सरकता गया और कैदियों के प्रवेश के बाद क्रूर रूप से चीखता बंद हो गया और हमारी दुनिया इस दरवाजे के पीछे।

बारी चीखा, 'क्या मार्सेलिस जहाज से भाग निकलने वाले कैदी तुम ही हो?'

मैंने भी दृढ़ता से उत्तर दिया, 'जी हां क्यों?'

सावरकर के इस दृढ़ जवाब से बारी थोड़ा ढीला पड़ा। 'यह मेरी बारी से पहली मुठभेड़ थी।' थोड़ा असमंजस हो बारी ने कहा- 'तुम बैरिस्टर हो, मैं एक अशिक्षित जेलर परंतु मेरा कहा हल्के में मत लो। खून तो खून ही है। तुम खून को खून नहीं मानते, खून स्वाधीनता नहीं ला सकता।'

तीसरी मंजिल की बैरक नंबर सात में, सावरकर लंगोटी में खड़े थे। 'वहां कटोरीनुमा थाली से, हौद के पानी से नहाना पड़ता था। समुद्र का खारा पानी वो भी सिर्फ दो कटोरी। एक तो पसीने भरी गर्मी और खारे

पानी से पूरा शरीर कसमसा उठा था। तीन वार्डर बैरक के आसपास तैनात।'

एक दिन युवा सावरकर को रोशनदान में लिपटा कोई कागज मिला, जो किसी वार्डर ने फेंका था। चिट्ठी वहां कारावास काट रहे, किसी बंगाली मित्र की थी। सावरकर बताते हैं, 'मुझे सूचित किया गया यहां माणिक टोला बमकांड के बंदी और इलाहबाद के 'स्वराज' पत्र के संपादक भी है।' मुझे सावधान भी किया गया कि, कुछ कमजोर दिल वाले कैदी जेलर से मिले हुए हैं, हर किसी पर यूं ही विश्वास न कर लूं।' दो वर्ष बाद सावरकर को पता चला, उनके बड़े भ्राता गणेश सावरकर भी यहां है। अंडमान के कैदी को वर्ष में एक ही बार अपने परिवार को पत्र लिखने की अनुमति होती थी। अन्य दुर्दांत कैदियों के बजाय राजबंदियों पर ज्यादा सख्ती बरती जाती। रस्सी बुनना और कोल्हू चलाना रोज का काम था। तीस पौंड रोज तेल निकालना होता था, जो कि कई राजबंदियों के लिए असंभव था। उन्हें फिर क्रूर सजाएं दी जाती। कोई-न-कोई कोठरी रोज रात को चीख उठती और अंडमान के सुनसान में डूब जाती।

जेलर बारी किसी भी राजबंदी के पास किताब, पेंसिल या कागज का कोई टुकड़ा भी देखता तो भड़क उठता। उसका मानना था ऐतिहासिक और धार्मिक पुस्तकें तो बहुत खतरनाक होती है। इससे राजबंदियों में उत्साह और चेतना पैदा होती है। सावरकर अपनी पुस्तक 'आजन्म कारावास' में लिखते हैं - 'मेरे पास रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, टॉलस्टॉय की 'माय रिलिजन' और अन्य पुस्तकें थी जो जब्त कर ली गई थी।'

जेल की यातनाएं असह्य होती जा रही थी, या तो राजबंदी दमतोड़ जाते या आत्महत्या कर लेते थे। खाना अधपका या कभी कच्चा ही मिलता। रोटी तो ऐसी जैसे कच्चा आटा खा रहे हों। खाने के बारे में शिकायतें बेअसर रही। सब्जी में छोटे-छोटे सांप के टुकड़े और एक जहरीले जीव की केंचुली के टुकड़े भी मिल जाते थे। वहां इंदुभूषण राय नाम का क्रांतिकारी युवक जो माणिक टोला बमकांड में दस वर्ष की सजा काटने आया। इंदुभूषण अपार कष्टों से टूट चुका था। ऐसा ही उत्साही क्रांतिकारी युवा उल्हासकर दत्त था, उसने जेल के कठोर कामों को करने से इंकार कर दिया। कोठरी में उसे अमानवीय रूप से पीटा जाता था। उन दोनों ने सावरकर से इस असहनीय यातना के बारे में बताते हुए आत्महत्या कर लेने की इच्छा जाहिर की। सावरकर ने उन्हें समझाया भी, तुम्हें दस वर्ष का कठोर कारावास मिला है, मुझे यहां पूरी जिंदगी काटनी है, अत: हिम्मत नहीं हारना चाहिए। लेकिन एक दिन वार्डन ने सूचना दी इंदुभूषण ने आत्महत्या कर ली है और उल्हासकर दत्त बुखार में पागल हो गया है। उल्हासकर दत्त को बिजली के झटके दिए जाते थे। अंतत: एक दिन वह भी कोठरी में अपने पहने कपड़ों की रस्सी बना फंदे पर झूल गया।

सावरकर इन आत्महत्याओं के समाचार से दुखी हो गए। वहां युवा क्रांतिकारियों को समझाते, जोश-जोश में क्रांतिकारी बनना फिर कठोर सजाओं में टूटकर आत्महत्या कर लेना ही देश सेवा नहीं है। सावरकर का मानना था कि युवकों को जोश में होश नहीं गंवाना चाहिए, पढ़ लिखकर ईमानदारी से निर्वाह करना भी देशभक्ति होती है। आखिर स्वतंत्र देश को शिक्षित युवकों की जरूरत होती है। युवा लोग पहले शिक्षित बने। अच्छे पढ़े-लिखे भावी नागरिक ही देश की स्वतंत्रता का निर्वाह कर सकते हैं। सावरकर ने कारागृह में कैदियों को शिक्षित करने का अभियान भी चला रखा था। साथ ही जिन पुराने बंदियों को बाहर भेजा जाता था, उनके साथ गुप्त पत्र भी भिजवा देते, एक दिन वे पकड़ लिये गए उन्हें दस दिन, डंडा बेड़ी के साथ हथकड़ी सलाखों से बांध खड़े रहने की सजा दी गई, सोना भी खड़े-खड़े। सिर्फ भोजन के वक्त वार्डन उनके हाथ और बेड़ियां खोलता था। जेलर बारी सुपरिंटेंडेंट को कहता था, यह सावरकर ही सबको भड़काता है।

एक दिन काम के बीच हम लोगों ने तय किया कि इस अमानवीय यातनाओं का कच्चा चिट्ठा बाहर हिंदुस्तान तक पहुंचाया जाए। इन सारे विवरणों को लिखने एवं बाहर पहुंचाने की जिम्मेदारी होतीलाल ने ली। होतीलाल ने विस्तृत पत्र तैयार किया। वह हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू का अच्छा जानकार था। रूस, चीन, जापान का भ्रमण कर चुका था। उसे दस वर्ष का सश्रम कारावास मिला था। अंतत: होतीलाल ने एक विश्वसनीय बंदी, जो जेल के काम से बाहर जाता था, उसे पत्र सौंप दिया। क्रांतिकारियों का यह काम सफल हुआ। यातानाओं का विस्तृत विवरण 'द बंगाली' के निर्भीक संपादक सुरेंद्रनाथ बैनर्जी के पास कलकत्ता पहुंच गया। उन्होंने इसे प्रमुखता से प्रकाशित किया है, ब्रिटिश सरकार के खिलाफ कठोर संपादकीय भी लिख डाला। फिर होतीलाल ने यह पत्र देश के प्रमुख समाचार पत्रों तक भी पहुंचा दिया। हालांकि अंडमान में राजबंदियों को यह तब पता चला जब एक जेलर बारी आग बबूला हो उठा।

वहां अंडमान में नानी गोपाल नाम का किशोर बंगाली युवा, जो मात्र 16 वर्ष का था, किसी अंग्रेज अधिकारी पर बम फेंकने के अपराध में 14 वर्ष का कारावास भुगतने आया। उसे कोल्हू का काम दिया, जो नियम विरुद्ध था, तो सावरकर और अन्य क्रांतिकारियों ने जोरदार आपत्ति उठाई। नानी गोपाल ने भी काम करने से इंकार कर दिया। उसे टाट का लबादा पहनने को दिया गया। उसने वह भी उतार फेंका। एक रात उसने न जाने कैसे अपनी हथकड़ियां भी तोड़ डाली। जेलर बारी ने जब उसे नंगे बदन बैंत मारने की सजा दी तो सारे क्रांतिकारियों ने जेलर को चेतावनी दे डाली। फिर जेल अधिकारियों ने नानी गोपाल को बाहर काम पर लगा दिया। नानी गोपाल के लिए सावरकर ने सभी से कह रखा था, उस पर जरा भी अत्याचार हो तो सबको सूचित करो। इधर जेल अधिकारी परेशान थे कि आखिर यहां की खबरें हिंदुस्तान तक कैसे पहुंच रही हैं। अंतत: ब्रिटिश सरकार के गृहमंत्री क्रडाक अंडमान दौरे पर भेजे गए। सावरकर ने लिखा, 'क्रडाक जब मुझसे मिला तो बोला सावरकर तुमने अपनी दुर्दशा स्वयं अपने हाथों की।' गृहमंत्री के खानापूर्ति कर चले जाने के बाद भी जेल की दुर्दशाओं में कोई खास परिवर्तन नहीं हुए।

'हमने फिर हड़ताल शुरु कर दी। नानी गोपाल पिछले दो माह से अन्न त्याग कर बैठा था, वह कंकाल में बदल चुका था। वह मृत्यु के द्वार पर खड़ा था। सावरकर ने भी अन्न त्याग दिया। अंतत: मुझे नानी गोपाल से मिलने की अनुमति मिल ही गई। मैंने नानी गोपाल को समझाया इस तरह जीवन व्यर्थ गंवाना ठीक नहीं हैं कुछ करके मरो। वह मेरी बात मान गया फिर हमने साथ में अन्नग्रहण किया।'

यह हड़ताल भी सफल हुई। अब कैदी लोगों को बाहर जाने की अनुमति दी गई। अनेक अड़चनों के बावजूद सावरकर ने एक पुस्तकालय बनाया, जिसमें दो हजार से अधिक पुस्तकें संग्रहित की गई। इन पुस्तकों में ईश्वरचंद विद्यासागर, रवींद्रनाथ ठाकुर, जोगेश चंद्र के अलावा अंग्रेजी पुस्तकें भी थी। हर्बट स्पेंसर, स्टुअर्ट मिल, डार्विन, हक्सले, कार्लाइल, इमर्सन, मिल्टन आदि लेखकों की किताबें थीं। सावरकर का बांग्ला गुरुमुखी और अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार था। महाभारत, रामायण और योग वसिष्ठ के संस्कृत संस्करण भी पुस्तकालय में मंगवाये गये। सावरकर ने योगसूत्र, ब्रम्हसूत्र, सांख्यसूत्र ग्रंथों का अध्ययन कर ही लिया था। उनकी सबसे प्रिय पुस्तक थी थामस ए कैम्पिस की 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट'।

1912 दिल्ली में आयोजित राज्याभिषेक समारोह के समय चांदनी चौक में गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग्स पर क्रांतिकारियों ने बम फेंक दिया था। वह तो बच गया, लेकिन ब्रिटिश सरकार कांप उठी। वायरलैस से यह जानकारी अंडमान में जेल अधिकारियों तक पहुंचा दी गई। जेलर बारी गुस्से से भरा था, अंतत: यह जानकारी जेल में बंद इन क्रांतिकारियों तक पहुंची कैसे ? बारी ने

एक दिन बताया कि गदर पार्टी के लाला हरदयाल को अमेरिका में गिरफ्तार कर लिया गया है। यह समाचार झूठा निकला, बाद में हमें पता चला वे अमेरिकी पुलिस को चकमा दे अमेरिका से भागने में सफल हो गए। लाला हरदयाल ने 1912-13 के बीच सावरकर के कई लेख 'गदर' नामक अपनी पत्रिका में प्रकाशित किए। 'अभिनव भारत' संगठन ने ही सबसे पहले जर्मनी का ध्यान हिंदुस्तान की स्वाधीनता की मांग की ओर आकृष्ट किया था। मदनलाल धींगरा ने लंदन में जब कर्जन वायली की हत्या की थी, तब जर्मन अधिकारियों ने ही सावरकर को सूचित किया कि शीघ्र ही इंग्लैंड छोड़ दें। इसी दौरान अंडमान में एक रूसी सैन्य अधिकारी एक दिन कारावास में सावरकर से मिले और उन्हें बताया कि यूरोप में लोग आपको याद करते हैं। उनके अनुसार बहुतों को यह मालूम था कि सावरकर अंडमान में आजन्म कारावास की सजा काट रहे हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ चुका था। इसी अवधि में मेरठ और आसपास खासकर लाहौर और पंजाब के कई हिस्सों में जबर्दस्त विद्रोह भड़क उठा था। हजारों लोगों को गोलियों से भून दिया गया। इसका जिक्र ख्यात लेखक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'गांधी, आंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएं' में किया है। इसके बाद अंडमान कैदियों से भर गया। इन जत्थों में कई सिख बंधु भी शामिल थे। इनमें सरदार हरनाम सिंह, पृथ्वीसिंह आजाद, सोहन सिंह, भानसिंह और धर्मवीर रामरख्खा इनके साथ ही साथ जोयदेव कपूर, आशुतोष लाहिड़ी, बाबूराम हरि, नानी गोपाल मुखोपाध्याय तो पहले से ही मौजूद थे। भाई परमानंद, वारिंद्र कुमार घोष, पुलिनदास, त्रिलोकीनाथ चक्रवर्ती और कई राजबंदी भी।

सावरकर लिखते हैं- 'हमारे साथ भानसिंह नामक सिख राजबंदी भी था। एक बार जेल अधिकारियों से जबर्दस्त सामना हो गया। जेल अधिकारियों ने उसे गालियाँ दी, उसने भी जवाब में गालियाँ दाग दी। जबर्दस्त झगड़ा हुआ। एक कोठरी में बंद कर भानसिंह को वार्डरों, पेटी अफसरों ने डंडों से बुरी तरह पीटा। भानसिंह की चीखें आसपास की कोठरियों तक पहुंची। अंततः भानसिंह ने अस्पताल में दम तोड़ दिया।'

फिर हमने हड़ताल पर जाने का फैसला किया। यह चौथी हड़ताल थी। सावरकर आगे बताते हैं- मैंने जेलर बारी को सख्त चेतावनी दी, 'तुम्हारे अत्याचार सीमा पार कर चुके हैं। तुम्हें इसके भयंकर परिणाम भुगतने होंगे।' सावरकर चाहते थे, कांग्रेस अपने अधिवेशनों में ब्रिटिश सरकार पर दबाव बनाए कि राजबंदियों को रिहा किया जाए लेकिन उन दिनों कांग्रेस ने इसमें कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। 'अंडमान में कठोर श्रम खासकर कोल्हू चलाने के काम से मेरा शरीर क्षीण होते जा रहा था, वहीं बाबा गणेश सावरकर तो 107 बुखार के साथ बहुत कमजोर हो चुके थे। पहले वे अस्पताल में भर्ती किए गए और अंततः मुझे भी भर्ती होना पड़ा। मैं लगभग मृत्युशैय्या के निकट पहुंच गया था।' यहां अपनी पुस्तक 'मेरा आजन्म कारावास' में सावरकर ने डॉ. दामोदर का जिक्र किया है। वे हरिजन थे, लेकिन बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व और विनम्र स्वभाव। वे अंडमान से भारत लौट रहे थे, तो सावरकर ने उनसे अनुरोध किया कि वे वहां जाकर इस कारागृह में राजनीतिक बंदियों की दयनीय स्थितियों, बंदियों की प्राणांतक यातनाओं, आत्महत्याओं के बारे में पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिख प्रकाशित करवाएं। डॉ. दामोदर ने हिंदुस्तान लौटकर अंडमान जेल पर एक विस्तृत लेख माला तैयार की, उसे विभिन्न अखबारों, पत्रिकाओं में प्रकाशित करवा दी। इससे भारतीय राजनीति में बड़ी हलचल मच गई। अंडमान के अधिकारी भी सकते में। लेकिन इस यशस्वी डॉ. दामोदर का इंफ्लुएंजा में निधन हो गया। सावरकर के अलावा किसी अन्य ने इस बात का उल्लेख नहीं किया। यह 1918 का वर्ष था, जेल में जब उनके निधन का समाचार पहुंचा तो 'हम लोग रो पड़े।'

देशभर के समाचार पत्रों में अंडमान की क्रूरताओं पर छपना शुरू हो गया। हम फिर हड़ताल पर थे। ब्रिटिश सरकार से जवाब देते नहीं बन रहा था। इस हड़ताल से राजनैतिक बंदियों को कष्टकारक कार्यों से मुक्ति मिल गई। कानून यह था कि अंडमान में दस वर्ष बीत जाने के बाद बंदियों को उनके देश में जाना चाहिए। वीर सावरकर ने भी अपना आवेदन प्रेषित किया। एक करार पर राजबंदियों को हस्ताक्षर करना होते हैं कि अमुक अवधि तक राजनीतिक गतिविधियों से दूर रहना पड़ेगा। 'हम सभी बंदियों ने विचार विमर्श कर करार पर हस्ताक्षर कर देने का मन बनाया, क्योंकि मेरा मानना था कि हम यहां रहकर बहुत-सा जीवन खत्म कर चुके हैं, यहां रह व्यर्थ मरने से अच्छा है देश समाज का काम करते हुए प्राण त्यागे।' फिर भारतीय राजनीति में भी राजबंदियों को निराशाजनक स्थितियों में ला खड़ा कर दिया था।

अब धीरे-धीरे वीर सावरकर और उनके बड़े भाई गणेश सावरकर की रिहाई के लिए देश भर में मांग गति पकड़ने लगी तो कांग्रेस भी इसमें शामिल हो गई। सावरकर ने जेल में कैदियों को शिक्षित करना शुरु कर दिया था। कैदियों को पुस्तकालय में जाने की अनुमति मिल चुकी थी। दीपावली, दशहरा तथा होली त्यौहार मनाए जाने की अनुमति भी दे दी गई। सावरकर के नायक गुरू गोविंद सिंह जी थे। उन्होंने उन पर 'कमला' प्रबंध काव्य रचा था। वे उन दिनों जेल की दीवारों पर ईंटों के टुकड़ों से लिखते थे।' मैंने साथी सिख बंधुओं को बताया कि गुरु गोविंदसिंह जी द्वारा लिखित नाटक 'विचित्र' तथा इतिहास पुस्तक 'सूर्य प्रकाश' जो ब्रजभाषा और पुरानी प्रचलित हिंदी में लिखी हुई थी।

अंतत: 1920 में सरदार वल्लभ भाई पटेल और बाल गंगाधर तिलक के प्रयासों से सावरकर बंधुओं की रिहाई का परवाना आ गया। लेकिन इस रिहाई के वक्त बाल गंगाधर तिलक का निधन हो चुका था। सभी राजबंदियों ने उस दिन खाना नहीं खाया। मार्च 1921 में श्री के.वी. रंगास्वामी आयंगर जो कि असेंबली के सदस्य थे, ने गवर्नर जर्नल को सावरकर को मुक्त करने के लिए जोरदार पत्र लिखा था। 1920 में यंग इंडिया में गांधी जी ने भी लिखा कि 'सावरकर बंधुओं के खिलाफ एक भी आरोप सरकार प्रमाणित नहीं कर सकी है। अत: उन्हें रिहा किया जाये।' भाई परमानंद ने भी अपनी मुक्ति के बाद कर्नल वैगवुड जो कि लेबर पार्टी के नेता थे, ब्रिटिश प्रेस के माध्यम से सावरकर की अंडमान में हो रही दुर्दशा के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार के खिलाफ प्रभावी प्रचार संघर्ष किया। स्वामी श्रद्धानंदजी के मित्र पादरी सी.एफ. एल्ड्रयूज ने भी कई लेख लिखकर सेल्यूलर की अमानीवीय यातनाओं का ब्रिटिश प्रेस में खुलासा किया।

'बिदाई का दिन था। मैंने अपना सामान समेटा और बांध लिया। अंतिम दिन बाहर के लोग मिलने आने लगे। वे फल और भेंट दे रहे थे। फिर भी मेरा मन उदास था, हम सब अब बिखर रहे थे। मैं और ज्येष्ठ बंधु सेल्युलर जेल के उसी विशाल लौह फाटक पर खड़े थे। सन् 1909 में यह द्वार बंद हुआ था। मई, 1921 में करकराती आवाज में खुल रहा था। विदाई देने टापू के अनेक लोग, संस्थाओं के प्रतिनिधि उपस्थित थे।'

जहाज धीरे-धीरे तट छोड़ रहा था। अंडमान का वह विशाल बंद फाटक भी सावरकर बंधुओं को विदा दे रहा हो मानो। समुद्र की लहरों के साथ-साथ अंडमान जेल की वे तमाम स्मृतियां भी सावरकर की आंखों में तैर रही थी। 'अंतत: सिपाही हमें फिर तलघर में उसी पिंजरे में ले गया जहां बदबू, दमघोंटू वातावरण था। पांचवां दिन था, डेक पर हवा खाने गया तो सामने हिंदुस्तान का तट दिखाई दिया। मेरे चेहरे पर एक मुस्कान बिछ गई।' देश की विभिन्न जेलों में फिर सावरकर जी को दो वर्ष रखा गया। अंतत: वे अपने गृह नगर पहुंच गये। इस संबंध में श्री धनंजय कीर की पुस्तक 'वीर सावरकर' भी पढ़ी जानी चाहिये।

*- 16-ए, अन्नपूर्णा नगर, इंदौर 452009 म.प्र.*
*मो. 9826093716*

# प्रतिनिधि हिंदी उपन्यासों के परिदृश्य में किन्नर व्यथा

**प्रवीण कुमार सहगल**

किन्नर समाज का वह वर्ग है जो शारीरिक रूप या यौनिक अंगों के विशेष संदर्भ में अपूर्ण माना जाता है। किन्नर की बाह्य देह का उसके अंत:करण के भावों से तालमेल नहीं होता अर्थात पुरुष देह में स्त्रियोचित गुण होते हैं या स्त्री की देह में पुरुष देह जैसी मांसलता होती है। वास्तव में यह एक जैविक अनिश्चितता के कारण होता है। इसी जैविक अनिश्चितता के कारण यह वर्ग समाज के अन्य वर्गों की भांति सामान्य प्रतीत नहीं होता। किन्नर को जीवन के प्रारंभ से लेकर अंत तक अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उसकी सबसे बड़ी चुनौती उसकी देह होती है। दैहिक बनावट और अंत:करण की भावनाओं में सामंजस्य न होने के कारण वे मानसिक वेदना तो सहते ही हैं, साथ ही कई बार उनकी देह शोषण का शिकार भी हो जाती है। लोगों के घरों में मंगल अवसरों पर अपनी वेदना को छिपाकर हर्षित होने वाले किन्नरों की देह लोगों में प्राय: आकर्षण का केंद्र बनी रहती है।

बुचरा और उनकी तीन बहनों के आधार पर इनकी चार शाखाएं हैं- बुचरा, नीलिमा, मानसा और हंसा। बुचरा की शाखा में पैदाइशी, नीलिमा की शाखा में जबरन बनाए गए, मानसा शाखा में इच्छा से बने और हंसा में उन्हें जगह दी जाती है जो शारीरिक कमी के कारण किन्नर बनते हैं। एक अन्य विभाजन के अंतर्गत नीलिमा शाखा के किन्नर गाने और ढफली बजाने का काम करते हैं तो मानसा शाखा का काम किन्नर बनने वाले व्यक्ति के लिए सामान इकट्ठा करना है। जब बुचरा किसी को किन्नर बना रहे होते हैं तब हंसा के जिम्मे साफ-सफाई का काम आता है। साथ ही कब्र खोदने और उसमें राख डालने का काम भी केवल हंसा शाखा के किन्नर ही करते हैं। शवों पर पहली मिट्टी डालने का काम बुचरा शाखा के लोग करते हैं। किन्नरों की भी एक पारिवारिक व्यवस्था होती है। यह व्यवस्था सामान्यजनों के परिवारों की तरह ही होती है। हर घर या घराने का एक मुखिया होता है, जिसे नायक कहते हैं। नायक के नीचे गुरु होते हैं फिर चेले। गुरु का दर्जा माता-पिता से कम नहीं होता। हर किन्नर को अपने गुरु को अपनी कमाई का एक निश्चित हिस्सा देना होता है। गुरु के नीचे काम करने वाले सभी चेले घराने की बहुएं कहलाती हैं। घराने के अंदर भाई, बहन, बुआ, दादा, दादी आदि का अपना स्थान होता है। जो किन्नर पुरुष प्रवृत्ति का होता है उसे भाई कहा जाता है। ऐसे ही महिला प्रवृत्ति के किन्नरों को बहन का ओहदा दिया जाता है।

साहित्यकार परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही साहित्य का सृजन करता है। यौनिक अस्पष्टता के कारण तिरस्कृत जीवन जीने को विवश तृतीय लिंगी समाज ने भी साहित्यकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। हिंदी साहित्यकारों ने किन्नर समुदाय से संबंधित अनेक उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासों में उपन्यासकारों ने किन्नर समुदाय की पीड़ा, अपमान, शोषण आदि को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है। हिंदी में रचित किन्नर जीवन

प्रधान उपन्यासों में लेखकों के द्वारा किए गए सर्वेक्षण और अध्ययन के आधार पर ही कथानकों को बुना गया और पात्रों का चयन किया गया है। इन उपन्यासों के सभी किन्नर पात्र पुरुष और स्त्री वेश में भिन्न-भिन्न सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में अपने अभिशप्त जीवन की विडंबना को भोगते हुए प्रतीत होते हैं।

नीरजा माधव कृत 'यमदीप' उपन्यास किन्नरों की संवेदना, किन्नरों के मन की अतल गहराइयों में हिल्लोरे लेने वाली भावनाओं एवं उनके जीवन यथार्थ की परतों को खोलता है। 'यमदीप' उपन्यास की नायिका नाज बीबी उर्फ नंदरानी है, जो महताब गुरु के आधिपत्य में बनारस स्थित किन्नर बस्ती में रहती है। चालीस वर्षीय नाज बीबी किन्नर ही इस उपन्यास की मुख्य पात्र है। उसके साथ चमेली, शबनम और मंजू हैं। वे बीस-पच्चीस किन्नरों की बस्ती में रहते है। वहां गली में एक पागल स्त्री प्रसव वेदना से तड़पती एक बच्ची को जन्म देकर मर जाती है। बच्ची के जन्म के बाद सभी वहां से हटने लगते हैं, तब नाज बीबी उस बच्ची को लेकर कहती है- 'कोई पूछनहार नहीं इसका तो क्या हम भी छोड़ जाएंगे ? अरे हम हिजड़े हैं, इंसान नहीं जो मुंह फेर लें।' उस बच्चे को लेने के लिए समाज तैयार नहीं हुआ, तब किन्नर नाज बीबी समाज पर व्यंग्य प्रहार करके उस बच्ची को अपने साथ ले जाती है, उसे सोना नाम देती है और मां बनकर उसका पालन पोषण करती है। लेखिका ने किन्नरों की ममता और मानवीय संवेदना को उजागर किया है। इस उपन्यास में मानवी और आनंद कुमार के माध्यम से किन्नरों से संबंधित ऐतिहासिक संदर्भो को रेखांकित करने के साथ-साथ उनकी समस्याओं एवं मानसिक यातनाओं को उजागर किया गया है। साथ ही उनकी सामाजिक उपयोगिता की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। लेखिका का मानना है कि किन्नरों की अवहेलना करने की बजाय उन्हें रोजगार उपलब्ध कराया जाए तो वे अपनी पारंपरिक भूमिका से बाहर आ सकेंगे और स्वतंत्र रूप से सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकेंगे।

महेंद्र भीष्म कृत 'किन्नर कथा' उपन्यास किन्नरों को अपने सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरुक करता है। 'किन्नर कथा' के माध्यम से किन्नरों की आह और वेदना की उपस्थिति दर्ज की गई है, जो अपने ही परिवार और समाज से निरंतर दुखों की पीड़ा झेलते रहते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में रानी आभा सिंह की कोख से दो जुड़वा बच्चियां जन्म लेती हैं, दोनों में से एक शिशु के जननांग अविकसित थे। जब आभा को इस सत्य का पता चलता है तो उस पर दुखों का पहाड़ टूट पड़ता है। वह जानती है कि राजा का व्यवहार गुस्सैल है, वह कभी भी इस बच्ची को अपनी संतान के रूप में स्वीकार नहीं करेगें। इसी कारण आभा चार वर्ष तक इस सत्य को छुपाये रखती है, लेकिन एक दिन राजा को अकस्मात् ही इस घटना का पता चल जाता है और वह क्रोधित होकर कहते हैं- 'भगवान! हमारी संतान हिजड़ा! वीर बुंदेला खानदान में हिजड़ा ने जन्म लिया और उसे कानों-कान खबर नहीं, इतना बड़ा धोखा, इतना बड़ा विश्वासघात।' इसी कारण वह अपनी बेटी सोना को मरवाने की योजना अपने दीवान पंचम सिंह के साथ बनाता है, ताकि समाज में उन्हें अपमानित न होना पड़े। इसी कारण वह अपनी पुत्री को दीवान पंचम सिंह को सौंप देता है, ताकि वह उससे छुटकारा पा सके।

उपन्यास का एक अन्य किन्नर पात्र तारा को भी इसी कारण घर परिवार से दूर होना पड़ता है। तारा के माता-पिता उसे दूर नहीं करना चाहते पर तारा का भाई उसे बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पाता। तारा के स्त्रैण स्वभाव के कारण सभी उसका मजाक उड़ाते। तारा स्कूल में लड़कियों से तो बोल लेता पर लड़कों से नहीं बोल पाता। जब परिवार वालों ने उसकी जांच करवाई तो पता चला कि वह किन्नर है। तारा अपने हिजड़ा होने

की पीड़ा कुछ इस प्रकार व्यक्त करता है- 'भगवान मेरे साथ अन्याय क्यों किया? मैं हिजड़ा हूं तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? घर-बार, मां-बाप, भाई-बहन, बच्चे कोई नहीं है मेरा, जिसे मैं अपना कह सकूं, सब कुछ होते हुए भी कोई मुझसे रिश्ता नहीं रखना चाहता, कोई मुझे अपनाने को तैयार नहीं है। बचपन से आज तक बस अपने-आप में ही दर्द पीते हैं। दूसरों को हंसाते आये हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते आये हैं, आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया। ईश्वर से बस एक शिकायत है कि आखिर क्यों उसने हमें ऐसा बनाया? क्यों हिजड़ा होने का दंड दिया? काश! हम भी औरों की तरह स्त्री या पुरुष होते, हिजड़ा होना कितनी बड़ी सजा है, यह कोई हिजड़ा ही समझ सकता है, दूसरा कोई कभी नहीं।' उपर्युक्त पंक्तियों में किन्नरों की असीम पीड़ा दिखाई देती है। एक किन्नर होना मतलब सभी पारिवारिक एवं सामाजिक रिश्तों का समाप्त हो जाना है। हमारे समाज के अभिन्न अंग किन्नर समुदाय पर लिखा गया यह उपन्यास कहीं न कहीं हमारे समाज को किन्नरों की पीड़ा, दुख-दर्द, जीवन जीने की विभीषका और भंयकर त्रासद स्थिति से अवगत कराना चाहता है।

डॉ. अनुसूइया त्यागी के 'मैं भी औरत हूं' उपन्यास में लेखिका स्वयं स्त्रीरोग एवं प्रसूति विशेषज्ञ है। उन्होनें ऐसी दो बहनों की कहानी लिखी है, जिन्हें स्वयं या उनके परिवार को लंबे समय तक उनके तृतीय लिंगी होने का आभास तक नहीं होता। उपन्यास में मास्टर तुलसीराम की दोनों बेटियां लैंगिक विकृतियों के साथ पैदा हुई हैं। यह बात न तो लड़कियां जानती हैं और न ही माता-पिता। छोटी बेटी रोशनी को तो उस समय पता चलता है, जब गांव के लड़के उसकी इज्जत लूटना चाहते है और उसे हिजड़ा कहकर भाग जाते हैं। तभी रोशनी को लगता है उसके शरीर में कुछ न कुछ अधूरा है। इधर मंजुला की बढ़ती उम्र से परेशान मां सोचती है कि मंजुला सत्रह की होकर अठारहवें में लग गई है, लेकिन उसे मासिक धर्म अब तक क्यों नहीं शुरु हुआ? अब वो कोई आलस्य नहीं करेगी, कल ही दोनों लड़कियों को गाजियाबाद दिखाकर लाएगी। डॉक्टर रमन्ना ने दोनों लड़कियों का शारीरिक मुआयना करने के पश्चात उनके माता-पिता को उनका ऑपरेशन करने की सलाह दी। अगले दिन पति-पत्नी दोनों बेटियों को डॉक्टर रमन्ना के नर्सिंग होम लेकर जाते हैं। माता-पिता जब दोनों बेटियों का ऑपरेशन करवाने के लिए जाते हैं, तब सबसे पहले उनके मन में समाज का भयानक चेहरा सामने आता है। तुलसीराम डॉक्टर से कहते हैं- 'डॉक्टर साहब, मैं दोनों बेटियों को लेकर आ गया हूं, अब आप दोनों बेटियों का ऑपरेशन कर दीजिए, पर आपसे प्रार्थना है कि आप हमारे बारे में किसी को भी न बताए, हम यह सब गुप्त रखना चाहते हैं। आप तो जानती हैं कि हमारे समाज में यदि यह सब बातें पता चलेंगी तो लड़कियों की शादी होना भी मुश्किल हो जाएगी।' ऑपरेशन करके दोनों बेटियों को स्त्री रूप दिया जाता है। लेखिका ने जहां शरीर विज्ञान और चिकित्सा संबंधी विवरण शामिल किए हैं, वहीं तृतीय लिंगी व्यक्ति की मानसिकता का भी खुलासा किया है। उपन्यास में किन्नरों की समस्याओं का गहन चिंतन करके सैद्धांतिक रूप में घटनाओं का चित्रण किया गया है।

प्रदीप सौरभ जी के 'तीसरी ताली' उपन्यास में उभयलिंगी, किन्नरों में समलैंगिकता को प्रधान विषय बनाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में गौतम नामक व्यक्ति के परिवार का वर्णन करते हुए उनके घर से कहानी की शुरुआत हुई है। उनके घर बेटा पैदा होता है, किंतु जब हिजड़े उनके दरवाजे पर तीसरी ताली बजाते हैं तो गौतम अपने घर का दरवाजा नहीं खोलता। गौतम और उनकी पत्नी घर में बच्चा पैदा होने की खुशी महसूस नहीं कर पाते, क्योंकि खुशियां भी लिंग पर निर्भर करती हैं। गौतम अपने किन्नर बेटे को समाज की नजरों से हमेशा दूर ही

रखता है, लेकिन अंततः सामाजिक अवहेलना के कारण उसे बच्चे को त्यागना पड़ता है। प्रदीप सौरभ कहते हैं कि हम विकलांग और विक्षिप्त व्यक्ति को पूरी जिंदगी साथ रखते हैं, लेकिन शारीरिक रूप से स्वस्थ इस वर्ग को साथ रखने को तैयार नहीं है। विनीत उर्फ विनीता, जो अपने आप में एक बहुत ही जीवंत चरित्र है, लेकिन अंदर से बिल्कुल टूटा, असहाय, खालीपन समेटे था। दूसरे शब्दों में कहें कि मृतप्राय है। वह कामयाब है-जमाने की दृष्टि में, लेकिन अपने मन की कोठरी में वह नितांत अकेला है। वह अपने एकाकीपन को किसी के साथ साझा भी नहीं कर सकता। अपनी आधी-अधूरी जिंदगी के साथ कामयाबी का नकाब ओढ़े जीवन जीने का प्रयास ही उसके चरित्र को जीवंत बनाता है।

उपन्यास का एक और पात्र आनंदी आंटी जो अपनी बेटी निकिता को पढ़ाना-लिखाना चाहती है, ताकि बड़ी होकर वह अपने पैरों पर खड़ी हो सके। उन्हें समाज की कोई परवाह नहीं, लेकिन सच्चाई इसके विपरीत है, जिसके चलते उन्हे निराशा का मुंह देखना पड़ता है। फिर चाहे लड़कियों का स्कूल हो या लड़कों का, दोनों जगह एक ही जवाब मिला कि जेंडर स्पष्ट न होने के कारण हम दाखिला नहीं दे सकते हैं। यह स्कूल सामान्य बच्चों के लिए है, बीच वाले बच्चों को दाखिला देने से स्कूल का माहौल खराब हो जाता है। यह कैसी विडंबना है या समाज का नियम है कि एक बालक चाहे कैसा भी है, उसे उसके माता-पिता अपने साथ रखकर पालन-पोषण करना चाहते हैं, वे उसके हर गुण-अवगुण के साथ उसे स्वीकारना चाहते हैं, लेकिन समाज दीवार बनकर खड़ा हो जाता है। यह तो जानवरों से भी बदतर स्थिति है। प्रस्तुत उपन्यास में किन्नरों की वर्जित दुनिया का चित्रण है। 'तीसरी ताली' उपन्यास में समलैंगिकता, गे मूवमेंट, लिंग परिवर्तन, अप्राकृतिक यौनात्मक जीवन शैली और असली-नकली किन्नरों की समस्याओं को व्यक्त किया गया है। इस उपन्यास में कुछ रोचक तथ्य भी सामने आते हैं, जैसे-किन्नर लोगों का शादी करना, करवाचौथ रखना, एक रात के लिए सुहागन बनना और अगले दिन विधवा हो जाना, विधवा होने पर विलाप करना, मंगलसूत्र तोड़ने की प्रथा आदि। 'तीसरी ताली' को हिंदी का साहसी उपन्यास कहा जाना चाहिए। किन्नर समाज बहिष्कृत और दंडितों जैसा जीवन जीने के लिए मजबूर है। 'तीसरी ताली' किन्नरों के सुख-दुख की आवाज है, उनके जीवन का दर्पण है।

निर्मला भुराड़िया का 'गुलाम मंडी' उपन्यास एक प्रमुख कृति है जो सन् 2014 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास यौन शोषण, स्त्री देह व्यापार, मानव तस्करी और किन्नरों को केंद्र में रखकर लिखा गया है। प्रस्तुत उपन्यास दो मुख्य कथाओं पर आधारित है। पहली कथा विश्वभर में बच्चों और औरतों की खरीद-फरोख्त की है जिसे मानव तस्करी कहा जाता है। दूसरी कथा है किन्नर वर्ग की, जिन्हें पग-पग पर अपनी अधूरी पहचान यानी लिंग स्पष्ट न होने के कारण तिरस्कृत होना पड़ता है, जबकि इसमें उनका स्वयं का कोई दोष नहीं होता। प्रस्तावना में लेखिका ने लिखा है- 'आखिर यह बाकी इंसानों की तरह मानवीय गरिमा के हक़दार क्यों नहीं? बस यही प्रश्न हमेशा से दिमाग में था। इसलिए इस नावेल में किन्नरों के पात्र रचे गए हैं और उनके बारे में उनकी तरफ से लिखा गया, समाज की ओर से नहीं। उनका पक्ष जानने समझने के लिए मैं कई किन्नरों से मिली हूं और उनके आवास पर भी गई हूं।' किसी किरदार को रचने के लिए आपको उस किरदार में उतरना पड़ता है। इसीलिए लेखिका की कृति पढ़कर लगता है कि उपन्यास यथार्थ धरातल पर रचित है। उपन्यास में दो मुख्य पात्र कल्याणी और जानकी हैं। इनके अतिरिक्त जानकी की बहन लक्ष्मी व कुछ किन्नर पात्र हैं। आरंभ में कल्याणी और किन्नर अंगूरी का मिलन होता है। अंगूरी के अनुरोध करने पर कल्याणी उसके साथ उनके डेरे पर जाती है और वहां पर भिन्न-

भिन्न मानसिकता वाले किन्नरों से मिलती है। इनमें गुरु का बहुत मान होता है। उपन्यास में किन्नरों की सम्पति हड़पने के लिए नकली किन्नर बनने जैसी घटना भी उजागर हुई है। इस उपन्यास में लल्लन नामक नकली किन्नर के माध्यम से इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है। इसके लिए वे पुलिस में शिकायत भी करते हैं कि लल्लन हिजड़ों का नाम बदनाम कर रहा है। हिजड़ों के नाम पर वारदातें कर रहा है, पर पुलिस ने यह कहकर टाल दिया कि जांच कैसे करें, किसी की भी मर्जी के बगैर लिंग परीक्षण करना न कानूनी है न प्रजातांत्रिक। ऐसा सिर्फ इसलिए कहा गया, क्योंकि पुलिस कुछ करना नहीं चाहती थी।

चित्रा मुद्गल बहुमुखी प्रतिभा की धनी है। एक ओर वे सजग एवं क्रियाशील साहित्यकार है तो दूसरी ओर सक्रिय एवं सफल समाज सेविका। चित्रा जी ने समाज की मुख्यधारा से अलग किन्नर वर्ग की संवेदनाओं को आत्मसात करते हुए 'पोस्ट बॉक्स नं 203, नाला सोपारा' उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास संवेदनात्मक उपन्यास है और किन्नर समुदाय के दैनिक यथार्थ, संवेदना, पीड़ा और दर्द से अवगत कराता है। प्रस्तुत उपन्यास एक किन्नर बेटे विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली और उसकी मां वंदना के पत्र व्यवहार के माध्यम से किन्नरों के संघर्षपूर्ण जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति है। उपन्यास में बिन्नी के बिमली बनने की घटना मार्मिक है। अपने अविकसित लिंग के कारण परिवार व समाज द्वारा बहिष्कृत बिन्नी अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करता है। वह सदियों से चली आ रही घृणित व क्रूर मानसिकता का विरोध कर समाज को यह समझाना चाहता है कि शारीरिक कमी के कारण मनुष्य को मनुष्य न मानना बहुत गलत है। विनोद परिवार से विस्थापित होकर परिवार की याद में तड़पते हुए मां से कहता है- 'तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी-सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कार्यवाही क्यों नहीं की? क्यों वह अनर्थ हो जाने दिया तूने, जिसके लिए मैं दोषी नहीं था।' विनोद अकेलेपन व अंतर्द्वंद्व के समय में अपनी मां को पत्र लिखता है। वह अंतर्द्वंद्व में रहकर अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने की हिम्मत रखता है।

बिन्नी संघर्षशील व्यक्ति है, वह किन्नरों के पारंपरिक पेशे भीख मांगने, नेग मांगने के पक्ष में नहीं है। किन्नर गुरु के अत्याचारों के बावजूद अपनी पढ़ाई जारी रखता है। बिन्नी जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण रखता है। वह जननांग विकलांगता को इतना बड़ा दोष नहीं मानता कि जीना ही छोड़ दिया जाए। बिन्नी कहता है- 'जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है, लेकिन इतना बड़ा भी नहीं है कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आंखें नहीं हो। तुम्हारे हाथ-पैर नहीं हैं। हैं...सब वैसे ही है जैसे औरों के हैं। सुनो पहचानो! पहचानो! अपने श्रम पर जियो, मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है-जहर। तुम्हें मारने का जहर, तुम्हें समाज से निकालने का जहर।' उपन्यास के अंत में मां अपनी मृत्यु से पहले अपने किन्नर बेटे को सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर अपनी सम्पति तीनों बेटों में बराबर बांटने की घोषणा करती है। किन्नर समाज अपनी अस्मिता को प्रतिष्ठित करने के लिए जी जान लगा देता है, किंतु फिर भी मात्र एक शारीरिक कमी के कारण समाज में तिरस्कृत होकर जीने के लिए अभिशप्त है। किन्नरों के प्रति समाज के नजरिये को बदलने में इस उपन्यास की उल्लेखनीय भूमिका है।

महेन्द्र भीष्म कृत 'मैं पायल' आत्मकथात्मक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास लखनऊ की किन्नर गुरु पायल सिंह के जीवन संघर्ष की गाथा है, जिसमें प्रत्येक किन्नर के अतीत के संघर्ष की झलक परिलक्षित होती है। विस्थापन का दंश कष्टकारी होता है, प्रत्येक किन्नर को सर्वप्रथम यही दंश अपने परिवार से भुगतना होता

है। किन्नर समाज के लोग अलिंगी देह को लेकर जन्म से मृत्यु तक अपमानित, तिरस्कृत और संघर्षमय जीवन व्यतीत करते हैं। आजीवन अपनी अस्मिता की तलाश में ठोकर खाते हैं। इस उपन्यास का मुख्य पात्र जुगनु उर्फ पायल किन्नर है। जुगनु का जन्म क्षत्रिय परिवार में हुआ था, जब उनके पिता को पता चलता है कि जुगनु एक किन्नर है, तब से वे उसका मुंह भी देखना पसंद नहीं करते। जुगनु बहुत छोटी थी तब उसको 'हिजड़ा' के बारे में पता नहीं था। एक दिन पायल के पिता दारु के नशे में उसे गाली देते हैं- 'जुगनी! क्षत्रिय वंश में कलंक पैदा हुई है, हिजड़ा है तू।' प्रस्तुत कथन से पता चलता है कि किन्नरों को उनके परिवार के लोग कलंक के रूप में देखते हैं। उपन्यास में पायल की मां उसके शरीर को लेकर चिंता जाहिर करती है, परन्तु वह हमेशा अपनी बेटी के प्रति समर्पित रही, पायल को मां के प्यार में कोई कमी महसूस नहीं हुई। मां अपनी संतान के प्रति भेदभाव नहीं रखती है। उसकी की संवेदना पायल के प्रति है, लेकिन पिता का क्रोध खतरनाक है। पायल जीवन में संघर्ष को जारी रखते हुए काम की तलाश में जुट जाती है और आकाशवाणी में नौकरी करती है। जिसे पिता कलंक कहता है, वही पायल अच्छी नौकरी करती है, अपने परिवार के प्रति समर्पण का भाव रखते हुए मां से चोरी मिलती है और उनकी पैसों से सहायता भी करती है। फिर पायल धीरे-धीरे किन्नर का पेशा अपनाती है और सफल किन्नर गुरु बनती है। इस उपन्यास में किन्नरों की समस्याओं के साथ-साथ एक मां की वेदना, तृतीयलिंगी औलाद के प्रति पिता का आक्रोश भी देखने को मिलता है। किन्नर को सर्वप्रथम घर से तिरस्कृत, उपेक्षित किया जाता है, लेकिन पायल जैसी संघर्षशील पात्र से बहुत कुछ सीखने को मिलता है। भीष्म जी ने किन्नरों की सामाजिक समस्याओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है, जैसे- पारिवारिक उपेक्षा और रिश्तेदारों की प्रताड़ना, समाज का भय, मानसिकता का परिवर्तन, पितृसत्तात्मक समाज, आर्थिक संकट और शैक्षणिक संघर्ष।

भगवंत अनमोल कृत 'जिंदगी 50-50' उपन्यास के नायक अनमोल के भाई हर्षा को किन्नर होने का दंश झेलना पड़ता है। नायक अनमोल का छोटा भाई और उनकी एकमात्र संतान, दोनों ही किन्नर हैं। अपने बच्चों का किन्नर होना उनके परिवार वालों के लिए एक श्राप के समान था। लोगों की मानसिकता ऐसी है कि सब किन्नरों से आशीर्वाद की कामना करते हैं, परंतु अपने घर में किन्नर का होना बर्दाशत नहीं है। अनमोल कहता है- 'मेरा छोटा भाई एक किन्नर है, पर उसका किन्नर होना मानो हमारे परिवार के लिए एक अभिशाप था। उसके जन्म के बाद शायद ही कोई दिन ऐसा हो जो हमने चैन से गुजारा हो। इसका जिम्मेदार न वह था, न ही मेरे माता-पिता। पर उसके किन्नर होने को अभिशाप में बदल दिया था हमारे तथाकथित समाज ने।' अनमोल का पिता उसके छोटे भाई से प्यार नहीं करता, क्योंकि वह हर्षा का किन्नर होना उसी का ही दोष समझता है। उन्हें अपने बेटे हर्षा के सुख से ज्यादा समाज का भय रहता था। समाज स्वयं तो किन्नर से घृणा करता है, परंतु उसके परिवार वालों को भी उससे नफरत करने के लिए विवश कर देता है। अनमोल के पिता समाज में अपनी इज्जत खोने के डर से उस मासूम बच्चे को मारने के लिए तैयार हो जाता है, परंतु मां और भाई अनमोल उसे बचा लेते हैं, फिर भी पिता का प्यार उसको नसीब नहीं होता। हर्षा को बचपन से लेकर बड़े होने तक कई जगहों पर अपने किन्नर होने के कारण बहुत-सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अंत में अपनी जिंदगी से त्रस्त होकर वह हार मान लेता है और फांसी लगाकर इस जिंदगी को अलविदा कह देता है, परंतु मरने से पहले वह अपने भाई अनमोल को चिट्ठी लिखकर कहता है कि जिंदगी में हर किसी में कमी होती है। सबकी जिंदगी 50-50 होती है, जैसे दिन

और रात, अंधेरा और प्रकाश। आपने हमेशा मेरे शारीरिक पक्ष को ही देखा। मेरी कमजोरी ही आपको दिखी... समाज की परवाह करते-करते आप यह भी भूल गए कि मैं भी एक इंसान हूं...आपके स्नेह प्यार की भूखी हूं...मेरी जिंदगी के इस हिस्से को आपने अनदेखा ही कर दिया....नतीजा यह हुआ कि मैं इस दलदल में आज फंस गई हूं। इसलिए मैं छोड़कर जा रही हूं आपको आपके समाज के साथ। अनमोल ने अपने भाई को पल-पल पिसते और अपमानित होते देखकर दृढ़ निश्चय किया कि वह अपने बेटे सूर्या को ऐसी कष्टपूर्ण जिंदगी नहीं देगा, बल्कि अच्छी जिंदगी के लिए उसकी मदद करेगा। उसे हर क्षेत्र में आगे ले जाएगा। उसने अपने बेटे को पढ़ा-लिखाकर काबिल बनाया। उसे अपने पैरों पर खड़े होने का वजूद दिया। अंतत: अपने पिता के सहयोग से सूर्या प्राइवेट डिटेक्टिव एजेंसी खोलने का लाइसेंस प्राप्त कर लेता है। उपन्यासकार ने यहां रुढ़िवादी, सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए समाज में एक नई ऊर्जा का संचार किया है। यदि प्रत्येक किन्नर के माता-पिता अनमोल की तरह सोचते हैं तो उन्हें कभी भी अपने घर-परिवार से विस्थापित होकर हाशिये पर जिंदगी गुजारनी नहीं पड़ेगी।

निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है कि किन्नर समुदाय आज भी समाज के हाशिये पर खड़ा हुआ एक तिरस्कृत एवं तिरोहित समुदाय है। सामाजिक स्वीकृति प्राप्त न होने के कारण यह समुदाय संघर्षरत है। संपूर्ण उपन्यास किन्नरों पर होने वाले अत्याचारों का दस्तावेज हैं। उपरोक्त उपन्यासों में किन्नर समुदाय की व्यथा-यातना-संघर्ष और जिजीविषा की अनवरत यात्रा है, लेकिन उसके साथ-साथ संपूर्ण समाज, व्यवस्था और व्यक्ति के अंदर छिपी कलुषित प्रवृतियां, स्त्री की नियति, बाल मन की यौनिक जिज्ञासाएं, प्रेम के गहरे अर्थ, देह की जरूरत, नैतिक मूल्यों की निरर्थकता, अमानवीय सामाजिक विषमता, मां की ममतामयी छवि की अपरिहार्यता और उसे महत्व देने की जरूरत जैसे अनेक सवाल उठाए गए हैं। उपन्यासों में समाज के तीसरे समुदाय की उपेक्षा और तिरस्कार का चित्रण है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारे समाज की मानसिकता किन्नर समाज के प्रति नकारात्मक ही है। हालांकि पिछले 5-6 वर्षों में समाज के बौद्धिक तबकों का नजरिया कुछ हद तक बदला है, जिसका एक कारण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किन्नर समुदाय के हक में दिये गये कुछ फैसले भी हैं, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण बात किन्नर समुदाय को 'थर्ड जेंडर' के रूप में मिली एक नई पहचान भी है। समाज की यथास्थितिवादी और परंपरावादी सोच को बदलने के प्रमुख आयामों में से एक, साहित्य भी है। आज साहित्य में छोटे स्तर पर ही सही पर किन्नर समुदाय को केंद्रित करते हुए एक नई बहस की शुरुआत हुई है। हम उम्मीद कर सकते हैं कि यह बहस आगे चल कर एक विमर्श का रूप लेगी, जिससे किन्नर समुदाय के हक-हकूक की लड़ाई में साहित्य एक सशक्त एवं सक्षम साधन बन कर उभरेगा।

**संदर्भ :** (1) वाङ्मय (त्रैमासिक हिंदी पत्रिका), खंड-तीन, थर्ड जेंडर कथा आलोचना, पृ. 71 (2) नीरजा माधव, यमदीप, पृ. 12 (3) डॉक्टर अनुसूईया त्यागी, मैं भी औरत हूं, परमेश्वरी प्रकाशन-नई दिल्ली, पृ. 26 (4) महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, पृ. 24 (5) वही, पृ. 88 (6) प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, पृ. 139 (7) निर्मला भुराडिया, गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन-नई दिल्ली, पृ. 5 (8) वही, पृ. 67 (9) चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन-नई दिल्ली, पृ. 11 (10) वही, पृ. 50 (11) महेंद्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन-रामबाग कानपुर, पृ. 26 (12) भगवंत अनमोल, जिंदगी 50-50, पृ. 143 (13) वही, पृ. 206 (14) वही, पृ. 215 (15) कई 'ई' स्रोतों से साभार।

*- डी-1209 डबुआ कालोनी, फरीदाबाद 121001 (हरियाणा), मो. 9871346063*

# ओडिआ-हिंदी साहित्य तुलनात्मक अध्ययन

**राजेंद्र सिंह गहलौत**

हो सकता है कि यह माना जाता हो कि चूंकि लेखन के विषय सीमित है इसलिये किन्ही भी दो भाषाओं के साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर उनमें समानता के बिंदु तलाशे जा सकते हैं। लेकिन लेखन के सीमित विषय होना ही सर्वमान्य नहीं है फिर भी यदि लेखन के सीमित विषय मान भी लिये जाये तो उनके बिंब तो असिमित होते हैं। इसके अलावा हर लेखक की अनुभूतियां भी अलग-अलग होती है और यदि लेखक अलग-अलग क्षेत्र ही नहीं अलग-अलग भाषाओं के भी हो तो उन क्षेत्रों की अपनी एक अलग ही तरह की सामाजिक घटनाएं, परिस्थितियां, परिवेश ही नहीं भौगोलिक वातावरण भी लेखक के लेखन को प्रभावित करता है। शेखर जोशी, शिवानी, शैलेश मटियानी, हिमांशु जोशी आदि पहाड़ी अंचल के लेखकों जैसा पहाड़ों के भौगोलिक वातावरण एवं संस्कृति को चित्रित करती रचनाये मैदानी भाग का लेखक नहीं लिख सकता है। देश के बंटवारे का दंश जितना और जैसा पंजाब एवं बंगाल ने झेला है तथा उन सबको रेखांकित करते हुए जिस भांति देश के विभाजन की त्रासदियों पर पंजाब एवं बंगाल के रचनाकारों ने रचनाएं लिखी है वैसी रचनाएं लिखना शायद मध्यभारत एवं उत्तर भारत के रचनाकारों के लिये लिखना संभव नहीं है। लेकिन इन सबके बावजूद डॉ. विजय कुमार महांति, जिन्होंने उड़ीसा के विभिन्न महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य किया है, ने ओडिआ साहित्य एवं साहित्यकारों की तुलना हिंदी साहित्य एवं साहित्यकारों से करते हुए 10 निबंध लिखे है जो की आलोच्य पुस्तक 'ओडिआ-हिंदी साहित्य तुलनात्मक अध्ययन' मे संकलित है। इस बेहद श्रमसाध्य एवं महत्वपूर्ण कार्य को उन्होंने दोनों भाषा के साहित्य का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण करते हुए प्रस्तुत किया है जिसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

विजय कुमार महांति ने अपने आलेखों में ओडिआ के जिन साहित्यकारों की तुलना एवं समानता हिंदी साहित्यकारों से की है उस संदर्भ में संभवत: उनका यह मानना है कि उड़ीसा एवं उत्तर भारत की सामाजिक स्थितियों एवं कृषकों की स्थितियों में काफी हद तक समानता है। यद्यपि पुरी के जगन्नाथ मंदिर के महाप्रसाद को छोटे बड़े हर वर्ग के लोगों द्वारा एक साथ बैठ कर ग्रहण करते हुए देखकर ऐसा लगता है कि उड़ीसा में उत्तर भारत की तरह जात-पात विभेद एवं वर्ग वैषम्य नहीं है लेकिन जब ओडिआ कहानीकार प्रतिभा राय की कहानी 'बाघ' की कहानी में चित्रित वर्ग वैषम्य एवं उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग के शोषण के चित्रों को देख कर ऐसा लगता है कि उड़ीसा एवं उत्तर भारत के हिंदी भाषी क्षेत्रों की सामाजिक स्थिति में काफी हद तक समानता है। संभवत: उडीसा एवं उत्तर भारत तथा कमोवेश अन्य हिंदी भाषी क्षेत्रों की सामाजिक स्थितियों में काफी हद तक समानता को देखते हुए ही महांति ने ओडिआ के संत कवि भीम भोई से कबीर दास, क्या शिल्पी फकीर मोहन से प्रेमचंद, उपन्यासकार गोपीनाथ महांति

से फणीश्वरनाथ रेणु, ब्रजनाथ रथ से बाबा नागार्जुन, गंगाधर मेहेर से मैथलीशरण गुप्त, उत्कल बंधु, गोपबंधु दास से माखनलाल चतुर्वेदी, वीणापाणि महांति से मन्नू भंडारी आदि की तुलना करते हुए उनकी रचनाओं में समानता के बिंदुओं की तुलना एवं विश्लेषण अपने आलेखों में की है। इतना ही नहीं ओडिआ तथा हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर तथा स्वतंत्रता संग्राम में ओडिआ तथा हिंदी साहित्य की एक समान सक्रिय भूमिका को भी अपने आलेख मे रेखांकित किया है।

डॉ. विजय कुमार महांति मूलत: उड़ीसा के निवासी तथा ओडिया भाषा के लेखक हैं। अत: हिंदी भाषा में लिखी आलोच्य पुस्तक में संग्रहित आलेखों में ओडिया साहित्य एवं साहित्यकारों से हिंदी साहित्य एवं साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए ओडिआ साहित्यकारों एवं उनके कृतित्व की तरह ही हिंदी भाषा के साहित्यकारों एवं उनके कृतित्व को बतलाना उनके ओडिआ भाषा के प्रति प्रेम का परिचायक हैं। लेकिन जब वे ओडिआ साहित्यकार फकीर मोहन के कृतित्व से हिंदी के कहानी एवं उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के कृतित्व की तुलना करते हुए यह कहते हैं, 'फकीर मोहन के 'छमाण आठगुंठ' और 'मामु' जैसे उपन्यासों का प्रकाशन बीसवीं सदी के प्रारंभ में हुआ था। अत: फकीर मोहन के इन उपन्यासों में वर्णित चरित्रों और भाषा शैली (आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी शैली) का प्रभाव प्रेमचंद पर पड़ना स्वाभाविक सिद्ध होता है।' (पृष्ठ 36, 37), तब यह प्रश्न उठता है कि क्या प्रेमचंद ने ओडिआ भाषा में लिखे फकीर मोहन के 'छमाण आठगुंड' और 'मामु' उपन्यासों को पढ़ा था? हो सकता है कि प्रेमचंद के युग में ओडिआ भाषा में लिखे इन उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद आ चुका होगा। लेकिन हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के आलेखों में कहीं ऐसा जिक्र नहीं मिलता है कि उनने फकीर मोहन के इन उपन्यासों को पढ़ा था, तथा वे इनसे प्रभावित थे। ऐसी स्थिति में प्रेमचंद के लेखन पर ओडिआ साहित्यकार फकीर मोहन की रचनाओं का प्रभाव पड़ना किसी भी तरह से सिद्ध होता प्रतीत नहीं होता।

महांति ने अपनी पुस्तक में संकलित आलेखों में ओडिआ एवं हिंदी साहित्यकारों के कृतित्व ही नहीं उनके जीवन एवं पारिवारिक स्थितियों में भी समानता के बिंदुओं को रेखांकित किया है। लेकिन से जब अंडल कहानीकार योगायतल एवं हिंदी कहानीकार एवं उपन्यासकार मन्नू भंडारी की पारिवारिक स्थितियों की तुलना करते हुए कहते हैं- 'वीणापाणि को साहित्य सृष्टि की दिशा में जैसा उत्साह अपनी माकुमुदिनी देवी, गौसी सरला देवी, ममेरे भाई अनंत पटनायक और गुरुचरण पटनायक आदि शुभेच्छुओं से मिला था वैसा ही उत्साह मन्नू भंडारी को अपने पिता सुखसंपत राय भंडारी, पति राजेंद्र यादव, देवर मोहन राकेश और जेट कमलेश्वर से मिला था।' (पृष्ठ 126) तो थोड़ा असहमति की स्थिति दिखलाई पड़ती है। मन्नू भंडारी राजेंद्र यादव से विवाह के काफी पहले से लेखन कार्य कर रही थी तथा उनकी पहली कहानी 'मे हार गई' राजेंद्र यादव से विवाह के दो वर्ष पहले ही 'कहानी' पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी थी। कई आलोचकों का मानना है कि मन्नू भंडारी का लेखन राजेंद्र यादव के लेखन से काफी बेहतर था। दूसरी ओर राजेंद्र यादव मन्नू भंडारी के प्रति कमी वफादार नहीं रहे। प्रतिष्ठित साहित्यकार सूर्यकांत नागर ने चर्चित साहित्यिक पत्रिका 'वीणा' के फरवरी, 2022 अंक में लिखा है- 'मन्नू जी पूरे समर्पण भाव से यादव जी से जुड़ी थीं पर राजेंद्र यादव की वफादारी सदैव संदेह के घेरे में रही।' ऐसी स्थिति में राजेंद्र यादव मन्नू भंडारी के सदा प्रेरक रहे कैसे माना जा सकता है। जबकि कमलेश्वर एवं मोहन राकेश, राजेंद्र यादव के भाई नहीं थे। राजेंद्र यादव मूलत: आगरा के रहने वाले थे तो कमलेश्वर मैनपुरी के सक्सेना परिवार में पैदा हुए थे तथा उनका मूल नाम नीरज सक्सेना था। जबकि मोहन राकेश का

जन्म पंजाब के अमृतसर शहर में गुगलानी परिवार (पिता श्री करमचंद गुगलानी) में हुआ था। फिर भी यह तो माना ही जा सकता है कि मन्नू जी ने राजेंद्र यादव के साहित्यिक कृतित्व से प्रभावित होकर ही उनसे विवाह किया था तथा विवाह के प्रारंभिक कुछ वर्षों में वे मन्नू जी के साहित्य लेखन में प्रेरक रहे। जबकि शादी के उन्ही प्रारंभिक वर्षों में राजेंद्र यादव से कमलेश्वर तथा मोहन राकेश की धनिष्ठता को देखते हुये संभवत: मन्नू जी ने कमलेश्वर को अपना जेठ तथा मोहन राकेश को अपने देवर की भांति माना तथा कमलेश्वर एवं मोहन राकेश साहित्य लेखन में उनके मार्गदर्शक बनें।

महांति जी ने ओडिया एवं हिंदी साहित्यकारों के कृतित्व में समानता के बिंदुओं को उनकी जिन रचनाओं में तुलना करते हुये विश्लेषित किया है उनमें से कुछ प्रमुख रचनाएं इस प्रकार हैं – फकीर मोहन के उपन्यास 'छमाण आठगुंठ' से प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान', वीणापाणि की रचना 'पांथशाला', 'जंजीर' एवं 'बिजुली' से मन्नू भंडारी की रचना 'मैं हार गई' तथा 'अलगाव', गोपीनाथ महांति की 'परजा', 'अमृतर संतान' तथा 'भाटीमटाल' से रेणु की 'मैला आंचल' एवं 'परती परिकथा' रचनाएं, व्रजनाथ रथ की 'बसंत', 'स्वाधीनता कथा पचारना' तथा 'तेल लघु शतक' रचनाओं से नागार्जुन की 'बहुत दिनों बाद', 'अकाल और उसके बाद', 'प्रेत का बयान' कविताएं, गंगाधर मेहर की 'तपस्विनी' तथा 'कृषिर गौरव' से मैथलीशरण की 'साकेत' तथा 'किसान', गोपबंधु की 'बंदीर आत्मकथा' से माखनलाल चतुर्वेदी के 'समर्पण' काव्य की 'फूल की चाह कविता' तथा मानसिंह की 'माटीवाणी' काव्य के 'महानदीर ज्योत्सना विहार' कविता से सुमित्रानंदन पंत के काव्य 'स्वच्छंद की 'नौका विहार' कविता आदि।

महांति ने अपनी पुस्तक मे संकलित आलेखों में ओडिआ साहित्यकारों एवं हिंदी साहित्यकारों के कृतित्व, व्यक्तित्व एवं पारिवारिक स्थितियों में समानता को ही ढूंढने एवं उसे स्थापित करने का काफी प्रयास किया है। जबकि तुलनात्मक अध्ययन में सिर्फ समानता ही नहीं अपितु अंतर पर भी चर्चा किया जाना जरूरी है जिसकी ओर उनने विशेष ध्यान नहीं दिया। यदि वे इस दिशा में अध्ययन करते तो संभवत: उन्हें विदित होता कि ओडिआ साहित्यकारों एवं हिंदी साहित्यकारों के कृतित्व, व्यक्तित्व एवं पारिवारिक स्थितियों में काफी अंतर भी है जो कि स्वाभाविक ही है।

बेहतर हो कि महांति जी कभी हिंदी एवं ओडिआ कि किसी चर्चित रचना जिसमें वे समझते हो कि उनके मध्य काफी समानता है को एक साथ प्रकाशित कर, उनका तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उनके बीच समानता एवं अंतर के बिंदुओं पर विस्तार से चर्चा करे जिससे कि हिंदी एवं हिंदी जानने समझने एवं पढ़ पाने में समर्थ उड़िया के पाठक लाभांवित हो सकें। लेकिन इन सबके बावजूद ओडिआ साहित्य एवं हिंदी साहित्य तथा उनके वरिष्ठ साहित्यकारों के मध्य तुलनात्मक अध्ययन, विश्लेषण, ओडिआ एवं हिंदी साहित्य को एक दूसरे के करीब लाता है जिसके लिये आलोच्य पुस्तक के माध्यम से डॉ. विजय कुमार महांति द्वारा किया गया प्रयास सराहनीय ही नही अपितु अन्य भाषाओं के साहित्यकारों द्वारा अनुकरणीय भी है।

*– बस स्टैंड के सामने, बुढार 484110*
*जिला शहडोल (म.प्र.)*
*मोबाइल 9329562110*

# हिंदी गद्य की सत्ता, स्वायत्तता और सामर्थ्य

**कृष्ण बिहारी पाठक**

जैसे 'मिट्टी हो जाना' और 'हिंदी हो जाना' नकारात्मक विभावन के रूप में प्रचलित हैं वैसे ही है 'गद्य हो जाना'। अर्थवादी चिंतन और आदिम स्वार्थ वृत्ति के चलते अमूल्य किंतु सहज सुलभ बहुमूल्य उपागमों के प्रति ऐसी अनर्थकारी दृष्टि विकसित हुई। निरा गद्य, निरीह गद्य, और 'गद्य हो जाने' की परिणति से उस उपलब्धि के बीच, जहां 'गद्य कवियों की कसौटी है' वहां तक गद्य की सत्ता, स्वायत्तता और सामर्थ्य की सीमा कहां तक और कितनी है? धिक्कार से धन्यता और तिरस्कार से पुरस्कार के पसारे में फैले गद्य की वास्तविक दशा और दिशा क्या है?

एक पुरानी उक्ति है कि कविता समय की छलनी से निस्यंदित होकर गद्य बन जाती है। अर्थात समय की सान पर चढ़ी हुई वर्तमान कविता समय की धुरी से उतरकर गद्य बन जाती है। कविता द्वारा ओढ़े-बिछाये बिंब, प्रतीक, और उपमान जब पुराने पड़ते जाते हैं तो कविता इस केंचुल को उतार फेंकती है कि ये बिंब, प्रतीक, उपमान उसके लिए किसी अर्थ के नहीं रहते। इस चुकी हुई अर्थवत्ता को ही अज्ञेय ने छूटा हुआ मुलम्मा कहा है।

'ये उपमान मैले हो गये हैं। देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।'[1]

काव्य भाषा घिसते-घिसते क्षीण अर्थवत्ता और दुर्बल अभिव्यंजना को समेटती हुई सामान्य भाषा में परिणत होती है, गद्य हो जाती है। अब रचनाकार की जिम्मेदारी दोहरी हो जाती है उसे अनुभूति को अभिव्यक्ति भी देनी है, और भाषा को नवीन सुसंप्रेष्य अर्थ छटा भी प्रदान करनी है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक 'शैली विज्ञान' में रचयिता के इसी कर्तव्य को लक्ष्य किया है- 'साहित्यकार अत्यंत सतर्कता से युग के परिप्रेक्ष्य में शब्दों की आत्मा, उनकी अर्थच्छटा को पहचानने के बाद ही उन्हें कृति के रूप में संयोजित करता है।'[2]

रचनाकार अपनी प्रातिभ चेष्टा और सृजन चेतना से अपना कर्तव्य संपादित करता है। रचना प्रक्रिया में भावों की अभिव्यक्ति के लिए पद्य को और चिंतन तथा विचारों की अभिव्यंजना के लिए वह गद्य को अपने लिए उपयुक्त माध्यम के रूप में पाता है। अनुभूत संवेदना कल्पना में रच-बसकर कागज पर उतरते उतरते कविता बन जाती है, परंतु गद्य में अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच संप्रेषण की क्षति होती है। इसीलिए हिंदी साहित्येतिहास में आदिकालीन साहित्य से लेकर रीतिकालीन साहित्य तक कविता गद्य को किनारे कर राजपथ पर निर्बाध विचरण करती रही, परंतु आधुनिक काल तक आते आते अवधी और ब्रज की सवारी करती हुई कविता के मार्ग को छेंकता हुआ गद्य खड़ी बोली की सवारी करता हुआ आया जिसे शुक्ल जी ने अवधी, ब्रज और खड़ी बोली के बीच उठने वाले भाषा विप्लव से मुक्ति दिलाने वाला भगवद अनुग्रह माना है।

'अत: भगवान का यह भी एक अनुग्रह समझना चाहिए कि यह भाषा-विप्लव नहीं संघटित हुआ और खड़ी बोली...धीरे-धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नये मैदान में दौड़ पड़ी।'[3]

शुक्ल जी की यह सम्मति गद्य की सत्ता के परिप्रेक्ष्य में रेखांकित करने योग्य है। हिंदी गद्य के उज्ज्वल भविष्य की शिवकामना करती यह उद्घोषणा स्पष्ट करती है कि यदि पूर्ववर्ती साहित्य में अवधी या ब्रज में विपुल गद्य साहित्य के अथवा खड़ी बोली में समृद्ध कविता के स्थापित प्रतिमान उपस्थित रहे होते तो खडी बोली के गद्य को सत्ता के लिए संघर्ष करना पड़ता।

ऐसे में गद्य को अपनी सत्ता के उन्मुक्त विस्तार हेतु वह भूमि न मिल पाती जो उसे मिली, और जिसे लक्ष्य कर शुक्ल जी ने गद्य लेखन के लिए खड़ी बोली के अनुमोदन पर मोहर लगाते हुए कहा कि - 'जिस धड़ाके के साथ गद्य के लिए खड़ी बोली ले ली गई उस धड़ाके के साथ न ली जा सकती।'[4]

इन संमतियों का यह अर्थ कतई नहीं है कि आधुनिक काल के साहित्यिक हिंदी गद्य से पूर्व गद्य साहित्य लिखा ही नहीं गया, अवश्य लिखा गया। राजस्थानी, ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली गद्य की परंपराएं मंथर-मंथर चली आ रहीं थीं परंतु वे अपनी बनावट और बुनावट की सुचिंतित सरणियां और प्रतिमान स्थापित न कर सकीं।

गद्य के इन क्षीण, पूर्ववर्ती रूपों को रामचंद्र वर्मा ने अशक्त और असमर्थ बताते हुए कहा है- 'उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व प्राप्त हिंदी-गद्य के उपर्युक्त तीनों रूप अशक्त थे। उनमें जीवन की व्यावहारिक समस्याओं से संबंधित तर्क-पुष्ट प्रौढ़ विचारों को वहन करने की क्षमता नहीं थी।'[5]

अपुष्ट परंपरा और क्षीण गद्य रूपों के बीच खड़ी बोली के शिष्ट गद्य को सत्ता की स्थापना में किसी व्यवधान का सामना नहीं करना पड़ा।

मिशनरियों का धर्म प्रचार, ब्रह्म समाज की गतिविधियां, हिंदी की आरंभिक पत्र-पत्रिकाएं, फोर्ट विलियम कॉलेज और गद्य चतुष्टय (लल्लू लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्लाह खां, सदासुख लाल), राजा द्वय (शिवप्रसाद और लक्ष्मण सिंह ), फ्रेडरिक पिंकाट और श्रद्धाराम फिल्लौरी ने हिंदी के नवोदित गद्य का मुक्ताकाश तैयार किया जिस पर संपूर्ण प्रभा के साथ भारतेंदु का उदय हुआ जिनकी शीतल स्निग्ध छाया में हिंदी नये चाल में ढली।

शुक्ल जी ने भारतेंदु हरिश्चंद्र की महत्ता रेखांकित करते हुए उन्हें हिन्दी गद्य का प्रवर्तक कहा है - 'उन्होंने.. गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया।.. उनके भाषा संस्कार की महत्व को सब लोगों ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया और वे वर्तमान हिंदी गद्य के प्रवर्तक माने गए।...भाषा का निखरा हुआ शिष्ट-सामान्य रूप भारतेंदु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।'[6]

शुक्ल जी ने गद्य को शिष्ट व्यवहार से जोड़कर परिभाषित किया है। व्यवहार में शिष्टता और स्वरूप में प्रजातांत्रिकता गद्य को सामर्थ्य प्रदान करने वाले स्थायी विशेषक हैं जो गद्य को आद्यंत विशिष्ट महिमा प्रदान करते हैं। शेष रही संप्रेषण की क्षति जिसकी पूर्ति के लिए रचनाकारों ने गद्य को कवित्वपूर्ण आत्मीय स्पर्श देने की रीति विकसित की।

मानवीय सृष्टि में भावों की विशुद्ध अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानवेतर प्रकृति, जड़-चेतन वस्तुओं और घटनाओं के वर्णन और अनुभूतियों को वे गद्य में आत्मीय स्पर्श के साथ और अधिक मुलायम बनाकर प्रस्तुत करने लगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये स्पर्श जितना मृदुल होता गया गद्य उतना ही स्वायत्त और समर्थ होता गया।

ऊपर उद्धृत शुक्ल जी के गद्य खंड को ही लीजिए। भारतेंदु और उनकी लेखन कला का भारतेंदु शब्द में

निहित इंदु (चंद्रमा) और उसकी कलाओं से साम्य देखते ही बनता है।

गद्यकारों ने गद्य को सार्वभौमिक सार्वजनीन संवेदनाओं से संपृक्त किया। मानवीय सृष्टि से लेकर मानवेतर प्रकृति और चराचर जगत के जड़-चेतन अवयवों तक।

पहले मानवेतर प्रकृति की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करते गद्य का सौष्ठव देखते हैं। बरसात के दिनों में नमी वाले स्थानों पर घास आदि का अंकुरण एक सामान्य प्राकृतिक घटना है जिसे शुक्ल जी ने अपने निबंध 'कविता क्या है?' में मानव और प्रकृति की पारस्परिक भाव संकुलता के साथ प्रस्तुत किया है - 'बरसात के दिनों में जब सुर्खी चूने की कड़ाई की परवा न कर हरी हरी घास पुरानी छत पर निकलने लगती है, तब हमें उसके प्रेम का अनुभव होता है। वह मानो हमें ढूंढती हुई आती है और कहती है कि 'तुम हमसे क्यों दूर दूर भागे फिरते हो?'[7]

कितने आत्मीय स्पर्श से लिखा गया है ये गद्य-खंड। चूने की कड़ाई को तोड़ते हुए हरी घास के अंकुरण का बिंब एक ओर अदम्य जिजीविषा का अविचल दृष्टांत प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर भौतिकता की दौड़ में प्रकृति से दूर भागते मनुष्य की हृदय हीनता में प्रेम, स्नेह और सौहार्द्र की उर्वर भूमि को सहलाकर कठोर से कठोर हृदय में प्रकृति प्रेम के स्नेह निमंत्रण की हिल्लोल पैदा करता है।

मानवीय सृष्टि में भावों के आरोपण से आगे बढ़कर पेड़ पौधों की भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ जड़ वस्तुओं में भी गद्यकारों ने संप्रेषण के श्रेष्ठतम अवदान तक समर्थ गद्य की सृष्टि की है। हरिवंश राय बच्चन ने आत्मकथा के पहले खंड 'क्या भूलूं क्या याद करूं' में एक घटना का वर्णन इसी रीति से किया है।

पुश्तैनी मकान के स्थान पर चौरस्ता सड़क का निर्माण होना और कवि के रूप में बढ़ती लोकप्रियता से पिता प्रतापनारायण का मुग्ध होना। इन समानांतर राग-विराग पूर्ण दृश्यों को एक साथ लेखक ने मार्मिक संवेदना का स्पर्श दिया है।

सड़क के बीचोंबीच चौतरफी बत्तियों का बिजली का खंभा उसी जगह गढ़ा था जहां कभी लेखक के पढ़ने-लिखने का कमरा था। अंधकार में उजाला फैलाती, मार्ग दिखाती चतुर्दिक बत्तियां और कवि की बढ़ती लोकप्रियता से मुग्ध पिता के आशीर्वाद में लिपटा यह गद्य खंड बहुत स्पृहणीय बन पड़ा है- 'जिस जगह रातों लैंप के सामने बैठकर तुमने विद्या अर्जित की थी, स्वाध्याय किया था, वहां किसी रात को अंधकार नहीं रहता, चार बत्तियां हर निशा में जलती हैं और सदा जलती रहेंगी-तुम्हारी साधना की साक्षी के रूप में और तुम्हारा सुयश चारों ओर..... ।'[8]

पहले उद्धरण में जैसे हरी हरी घास गद्य के कोमलकांत स्पर्श से बोल उठती है वैसे ही यहां चार बत्तियां सजीव होकर रचयिता की साहित्य साधना का दिग्दिगंत वृंदगान कर रहीं हैं।

हिंदी के गद्य को समर्थ बनाने के लिए गद्यकारों ने गद्य की अंतर्वस्तु के साथ साथ बाहरी बनावट और बुनावट पर भी काम किया। अंतर्वस्तु को भावनाओं की पारदर्शी अभिव्यक्ति प्रदान की तो संरचनात्मक संगठन को शैलीगत वैशिष्ट्य। गद्य के इस आभ्यंतर की डिजिटल जगत में तकनीकी के हार्डवेयर-साफ्टवेयर से तुक मिलाकर देखें तो गद्यकारों ने संवेदनशील लेखन, व्यवहार की शिष्टता, भावुक आत्मीयता का स्पर्श और कवित्वपूर्ण दृष्टि से गद्य का साफ्टवेयर निर्मित किया और शैली वैज्ञानिक तत्वों से गद्य का हार्डवेयर।

भावपूर्ण आत्मीय स्पर्श और कवित्व पूर्ण दृष्टि का विवेचन हम ऊपर कर आए हैं, अब गद्य को समर्थ बनाते शैली विज्ञान की ओर देखते हैं। शैली का संबंध एक ओर प्रयुक्त साहित्यिक भाषा के विश्लेषण-विवेचन से है तो दूसरी ओर रचनाकार के व्यक्तित्व से।

भाषा की प्रवृत्ति गतिशील है इसलिए भाषा का एक ही शब्द बदलते कालचक्र और परिवेश में हर साहित्यकार के लिए एक-सा अर्थ व्यंजित नहीं करता। रचनाकार अपनी शैली और रचना की आवश्यकता के अनुरूप शब्दों का संयोजन और दोहन करता है। यह बहुत सावधान प्रक्रिया है कि इसमें भाषा, प्रयोक्ता और पाठक तीनों ही सजीव और गतिशील होते हैं और इस सजीव गतिशीलता के बीच अक्षत संप्रेषण की चुनौती आद्यंत बनी रहती है।

शैली के अंतर्गत चयन, विचलन, समानांतरता, अप्रस्तुत विधान, बिंब, प्रतीक तथा बहुअर्थता आदि का विवेचन किया जाता है।

कोमल कठोर भावों के अनुरूप ध्वनि और शब्दों का प्रयोग, बड़े छोटे के लिए महाप्राण-अल्पप्राण की युक्तिसंगत योजना, आदि चयन के अंतर्गत आते हैं।

गुलेरी जी की कालजयी कहानी 'उसने कहा था' की पहली ही पंक्ति में शब्द चयन का शैली वैशिष्ट्य देखा जा सकता है - 'बड़े- बड़े शहरों के इक्के-गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है.. उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें।'[9]

कोड़े की हिंसक प्रवृत्ति के साम्य में 'जबान' की परुष शब्दावली और मरहम की प्रशीतक प्रवृत्ति के साम्य में 'बोली' का प्रयोग चयन की सार्थकता के प्रमाण हैं। विचलन के अंतर्गत रचनाकार चली आ रही भाषायी संरचना और शब्दावली में बदलाव करके विशेष अर्थवत्ता का निर्माण करता है। गोदान का यह अंश देखिए - 'गोबर उस गांव में पहुंचा...सहसा जंगी ने उसे पहचानकर कहा- 'अरे, यह तो गोबरधन है।'[10]

तीन सौ पृष्ठों और हजारों शब्दों के इस उपन्यास में प्रेमचंद ने होरी के बेटे 'गोबर' का पूरा नाम 'गोबरधन' केवल एक बार प्रयुक्त किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है। गोबर अब पहले वाला गोबर नहीं रहा, वह शहर से पैसे कमाकर आया है। उसके रहन सहन, वेश भूषा में नयी चमक और ढ़ब आ गई है। दूसरे यह कि वह अपनी ससुराल में आया है।

नागर संस्कृति और ससुराल के आतिथ्य को एक साथ यहां गोबर से गोबरधन के प्रयोग में व्यंजित किया गया है। गोबर से गोबरधन की ओर विचलन ग्राम्य से नागर, अशिष्ट से शिष्ट और विपन्न से संपन्न की ओर ले जाने वाला विचलन है।

गद्य को सौष्ठव देने के लिए प्राय: सभी गद्यकारों ने समानांतरता की शैली का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत प्राय: दो समान या विरोधी विमाओं को संतुलन और तनाव के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

मैथिल कोकिल विद्यापति की कविता में रति और भक्ति की तुलना रामकुमार वर्मा ने इसी शैली में की है- 'इस वय:संधि में ईश्वर की संधि कहां, सद्य स्नाता में ईश्वर से नाता कहां और अभिसार में भक्ति का सार कहां? उनकी कविता विलास की सामग्री है, उपासना की साधना नहीं।'[11]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'लोभ और प्रीति' निबंध में लोभियों के अनुकरणीय और विगर्हणीय विशेषकों को एक साथ तौलते हुए समानांतर शैली में ये विलक्षण पंक्तियां लिखीं हैं- 'तुम धन्य हो! तुम्हें धिक्कार है।'

यह अनुच्छेद पूरे हिंदी साहित्य में गद्य की अग्रगामिता और पेशकारी का अद्वितीय उदाहरण है। चयन, विचलन और समानांतरता के समान ही शैली के अन्य अवयवों का सोद्देश्य प्रयोग गद्य को समर्थ बनाने के लिए किया जाता रहा है।

गद्य की सत्ता और सामर्थ्य के साथ-साथ गद्य की स्वायत्तता भी गद्य विमर्श के अंतर्गत आती है। स्वायत्त का संबंध निजता की पहचान, अस्मिता और इयत्ता से है। अर्थात स्वायत्त गद्य से अभिप्राय ऐसे गद्य से है जो गद्यात्मक विधाओं से ऊपर उठकर विशुद्ध नीरंध्र खालिस गद्य के रूप में अपनी पहचान बनाता है। वह उपन्यास, कहानी,

नाटक, निबंध नहीं है केवल और केवल गद्य है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ऐसे स्वायत्त गद्य लेखन को विरल परंतु वांछनीय बताया है। इस संदर्भ में उन्होंने महादेवी वर्मा, रामविलास शर्मा, हजारीप्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय और निर्मल वर्मा के गद्य को स्वायत्तता से जोड़ा है। 'हिंदी गद्य : विन्यास और विकास' नाम्नी पुस्तक में वे लिखते हैं- 'हिंदी में इस स्थिति के नजदीक महादेवी का गद्य आता है।...उनकी एक ही रचना ('चीनी फेरीवाला' या 'घीसा')किसी संग्रह में कहानी है, कहीं संस्मरण और कहीं रेखाचित्र।'[12]

विधाओं की रस्सियों को तुड़ाकर निर्द्वंद्व, स्वच्छंद विचरण करने वाला गद्य ही स्वायत्त गद्य है जिसके पारायण को अज्ञेय ने अनिर्वचनीय आनंद से जोडकर देखा है। हिंदी का साहित्येतिहास लिखते समय शुक्ल जी ने आधुनिक काल को गद्य-काल नाम दिया। यह बहुत सांयोगिक है कि शुक्ल जी का यह पूर्व कथन आगे चलकर सिद्ध वाक्य साबित हुआ और गद्य ने अपना स्वरूप विस्तरित करके कविता को भी अपने में समाहित कर लिया।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इसे गद्य की पद्य पर जीत के रूप में रेखांकित किया है- 'यह गद्य की चतुर्मुखी विजय का प्रमाण है जबकि कविता भी गद्य में लिखी जाने लगी है।'[13]

गद्य बनाम पद्य के बीच छिड़ी इस जय-पराजय से ऊपर उठकर दोनों के समन्वयपूर्ण सह-अस्तित्व की स्वस्तिकामना भी इस बीच उठकर आयीं हैं - 'यदि संभव हुआ तो गद्य और पद्य का शैलीगत पार्थक्य मिट सकता है। दोनों एकाकार हो सकते हैं। हिंदी का मुक्त छंद अपने स्वरूप में भविष्य का यह रूप छिपाये हुए हैं। 'वस्तु' और 'व्यक्ति' के समन्वय पर बल देने वाले विविध कवि-प्रयोग भी आज इसी दिशा की ओर संकेत कर रहे हैं।'[14]

कविता गद्य में और गद्य कविता में मिलने को आतुर है। आज हम कविता में चिंतन और गद्य में कल्पना एक साथ कर रहे हैं, यह शुभ संकेत है। गद्य और पद्य से परे यह संपूर्ण साहित्य की सत्ता, स्वायत्तता और सामर्थ्य के उत्थान की ओर एक कदम है।

**संदर्भ :** (1) अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, 1966ई. सुनहले शैवाल (कलगी बाजरे की) अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. दिल्ली, पृष्ठ 60 (2) तिवारी, डॉ भोलानाथ, 1983 ई., शैली विज्ञान, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 42 (3) शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1948ई, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 406 (4) वही, पृष्ठ 406 (5) तिवारी, डॉ रामचंद्र, 2009 ई., हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 4 (6) शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, 1948ई, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 449 (7) शुक्ल, आचार्य रामचंद्र,1950 ई., चिंतामणि (कविता क्या है?), इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, पृष्ठ 151 (8) बच्चन, हरिवंश राय, 2002 ई. क्या भूलूं क्या याद करूं, राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृ.31 से 32 (9) गुलेरी, पं. चंद्रधर शर्मा, संपादक - डॉ मनोहर लाल, 2006 ई., उसने कहा था और अन्य कहानियां, जगतराम एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ 109 (10) प्रेमचंद, 2010 ई. गोदान, नई सदी बुक हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 174 (11) वर्मा, रामकुमार,1955 ई., हिंदी साहित्य का इतिहास, रामनारायण लाल प्रकाशन, प्रयाग, पृष्ठ 192 (12) चतुर्वेदी, रामस्वरूप, 2008 ई., हिंदी गद्य : विन्यास और विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 15 (13) वही, पृष्ठ 13 (14) तिवारी, डॉ रामचंद्र, 2009 ई., हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 4

- व्याख्याता हिंदी, तिरुपति नगर, हिंडौन सिटी, जिला करौली (राजस्थान) 322230, मोबाइल 9887202097
मेल : kpathakhnd6@gmail.com

# यंत्र-युग पर व्यंग्य की बहुकोणीय धार : मेघदूत का टी. ए. बिल

डॉ. अशोक कुमार मंगलेश

आज भारत यंत्र-युग की ओर द्रुतगति से अग्रचारी है। मनुष्य विज्ञापन पर छपे चित्र के समान मूक अभिव्यक्ति में विश्वास करने लगा है, जैसे उसकी जुबान काट दी गई हो। लोक साहित्य एवं जीवन में व्यंग्य की व्यापक स्वीकृति रही है। किंतु हिंदी में व्यंग्य का स्वरूप अब पहले जैसा नहीं रह गया है। इसकी वजह हमारी सामाजिक व्यवस्थाओं में अंतर्विरोध, लोकतंत्र की राजनीति, प्रशासन तंत्र, बाजार युग का लाभवादी नजरिया, संवेदनहीनता जैसे अनेक सरोकारों से उपजी बहुकोणीय दृष्टि है। इन्हीं परिदृश्यों के कारण आज साहित्य और समाज का बहुत बड़ा हिस्सा अपने आप में व्यंग्य प्रधान बन गया है। अपने समकाल की सृजनात्मकता को व्यंग्य में ढालना सर्जक के लिए भी बड़ा चुनौतीपूर्ण कार्य हो गया है।

समय-समय पर व्यंग्य रचनाकारों ने जिन विसंगतियों को लेकर वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक नापाक परिस्थितियों के प्रति लक्ष्य संधान किया है, वे आज भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं। व्यंग्य-शर चलाने वाले रचनाकार, कलाकार अपने-अपने तर्कस से एक-से-एक तेज धार और कारगर बाणों का आक्रोशपूर्ण संधान कर रहे हैं, किंतु व्यवस्थाएं टस से मस होने का नाम तक नहीं लेतीं। व्यंग्यकार निश्चय ही स्थिति में परिवर्तन, सुधार एवं बदलाव चाहता है। वह समाज और मनुष्य जीवन की विसंगतियों, विद्रूपताओं और विषमताओं को दूर करना चाहता है। मनुष्य की व्यक्तिगत दुष्प्रवृत्तियां भी अंतत: समाज के संचालन में बाधक-घातक होती हैं। दूषण-प्रदूषण के निराकरण के लिए सदा चिंतनशील तत्परता से लैस व्यंग्यकार अपने व्यंगास्त्रों, औजारों, शाब्दिक बारूदों से समाज, सत्ता, व्यवस्था और जीवन में निरंतर बदलाव लाना चाहता है।

व्यंग्यकार श्री बी.एल. आच्छा के नये व्यंग्य संग्रह 'मेघदूत का टी. ए. बिल' के उत्कृष्ट सृजनात्मक व्यंग्यों से गुजरते हुए मुझे एक सुखमय स्थिति का साक्षातीकरण हुआ है। प्रो. आच्छा की व्यंग्य रचनाएं व्यवस्थाओं की दूषित-प्रदूषित विकृतियों से सीधे टकराकर सकारात्मकता का संचार करने वाली हैं। अपनी पैनी दृष्टि से मानव चरित्रों, घटनाओं, स्थितियों, मन: स्थितियों के सूक्ष्म-पर्यवेक्षण प्रस्तुत करती हैं, साथ ही सृजन में प्रामाणिकता व स्मरणीयता का तादात्म्य भाव भी स्थापित करती हैं। आच्छा जी अपने ऊर्जा-प्रवाह में पाठक को भी अपने साथ बहा ले जाने का सामर्थ्य रखते हैं। यह उनका तीसरा व्यंग्य संग्रह है किंतु उनकी व्यंग्य रचनाओं से लगता है कि वह जन्मजात व्यंग्यकार हैं। 'कुछ अपनी बतकही' में व्यंग्यकार आच्छा जी लिखते हैं, 'आज जब मोहल्ले-मोहल्ले के महानायक हैं, तो व्यंग्य और जरूरी हो जाता है। यह महानायक तो विकृतियों की अपसांस्कृतिकी-असामाजिकी का प्रतीक है।' और भवानीप्रसाद मिश्र की पंक्ति 'भीतर की तकलीफ सृजन की माता है।' आच्छा जी की भीतरी पीड़ा को कुरेदती

है और संवेदना से उपजे उनके व्यंग्य, उनकी सृजनात्मक प्रतिभा, सोच, भाषाशैली और विमुग्धकारी शब्द-गठन, उन्हें सहज व्यंग्य साधक सिद्ध करते हैं।

इस संग्रह में उनकी 41 व्यंग्य रचनाएं संग्रहीत है। शीर्षक व्यंग्य 'मेघदूत का टी.ए. बिल' मेघदूत के कालिदास सहित पौराणिक पात्रों की प्रासंगिकता पर आधारित नव्य प्रयोग है। 'ट्रेनिंग बॉडी लेंग्वेज की' प्रसाद और शुक्ल की कामायनी व चिंतामणि का स्मरण कराती है। लेखक लिखता है, 'अपने जमाने के चिंतकों और साहित्यकारों की फोटो देखता हूं तो बॉडी लैंग्वेज चकराती है। पत्रिकाएं चिकनी हैं। पूंजीवाद की टोल टैक्स वाली रेशमी सड़कों की तरह। रंग बेहद चटख हैं। पूंजी के रंगीले बाजारों की तरह, मगर मुद्राएं बड़ी चंचल और शोख हैं अपने समय के किरदारों की तरह।' लेखक ने आज के रचनाकारों, नेता-अभिनेताओं पर ग्राफिक्स के प्रभाव से घिरे चकाचौंध वाले पर्दे पर चटकारे लेते हुए तंज कसे हैं।

'नीबू मिर्ची का जमाना' व्यंग्य रचना से एक आदिम भय को पकड़ते हैं। 'लगता है कि तमाम मशीनी जांचों के बाद भी बीमारी पकड़ में नहीं आ रही है और आदमी अपने आदिम भय को नीबू-मिर्ची में टटोल रहा है।' लेखक अफसोस जताता है कि वैज्ञानिक चमत्कारों के जमाने में भी मन का विश्वास क्यों नीबू-मिर्ची में जाकर लटक जाता है और 'सगुन' के रूप में झाड़ू प्रतिष्ठित होती है। इलेक्ट्रोनिक युग में भी 'पत्थर युग' के आदिम भय की दरकार क्यों है।

आज मनुष्य के पैर जमीन पर नहीं, बल्कि मनुष्य ही इंद्रधनुषी तरंगों में तैर रहा है। 'वॉशिंग मशीन में बाल सरस्वती' रचना का कथ्य पब्लिक स्कूलों की बढ़ती फीस, डोनेशन, मां-बाप का दिखावा, कोमल कंधों पर थैलों का बढ़ता वजन और शिक्षा विभाग के ढकोसलों पर तंज कसती है। रचना से सारथी का एक संवाद देखिए, 'देव, आजकल सभी का यह विचार हो गया है कि एक बार बच्चों को ऑटोमेटिक वॉशिंग मशीन की तरह महंगे स्कूल में डालकर प्रोग्राम स्विच ऑन कर दो। बच्चे साबुनी पानी में खुलेंगे, सूखेंगे और टाई पहनकर बाहर निकल आएंगे। और मां-बाप भी पड़ोसी को स्टेटस दिखाते हुए कहेंगे, 'हमारे बच्चे तो हर सब्जेक्ट की अलग-अलग ट्यूशन करते हैं।' इस व्यवस्था में सत्ता, स्कूल प्रशासन के साथ अभिभावक भी दोषी हैं, जो अपने बच्चों को इतनी कवायदों की प्रतियोगिता में झोंककर आत्महत्या की मानसिकता तक पहुंचा देते हैं। इसी कथ्य के साथ 'गुरु हाथ से ले गयो सत्रह नंबर' अध्यापन और परीक्षा प्रणाली पर व्यंग्य रचना है। शिष्य के पूछने पर, 'सर, इस कविता में द्वादश कौन-सा है?' सही मायने में वादों में मवाद इतना हो गया है कि आत्मा का पता ही नहीं चलता और गुरु जी कहते हैं 'सैनिकवाद।' यह चरमवेला है घंटा से घंटावाद, छायावाद में सैनिकवाद घुसकर गुरु को गुरु घंटाल बना देता है। 'काली नदी में प्लास्टिक फूल' पर्यावरण और प्रकृति के दूषित होने के कारणों पर प्रकाश डालती है विशेषत: प्लास्टिक-पॉलीथिन रोकथाम के भरपूर प्रयासों के बावजूद। व्यंग्य द्रष्टव्य है, बेबसी है भटकती गायों की। बची हुई प्लास्टिक कई रंगों में इस तालाब की शोभा बिखेर रही हैं। नीले प्लास्टिक नीलकमल। गुलाबी में अरविंद। काले में कृष्ण कमल। सफेद पन्नियों को देखकर ऐसा लगता हैए जैसे काली चमड़ी पर फफोले ऊकस आए हों और उधर देखिए राजकुमार! कभी सफेद बगुले नजर आते थे, अब झाड़ियों पर सफेद पन्नियां झंडे गाड़ रही हैं। यह काली रबड़ी गाद तो सफेद पन्नियों की चमक के लिए काली कसौटी है। इस गाढ़ी गाद में बुदबुदे तो ब्लैक होल-से फुसफुसाते रहते हैं।' प्रस्तुत रचना में लेखक का यह कहना मारक है 'अब कीचड़ में प्लास्टिक फूलों को उन्मुख खिलते देख उनका बाल मन भारी हो गया है।' पौराणिक शैली का प्रयोग व्यंग्यकार को सिद्धहस्त हस्ताक्षर के रूप में स्थापित करता है।

'दादा! टेंकर आ गया' आज की वैश्विक समस्या जल संकट से प्रभावित है। आज जब हम प्रकृति के वरदान स्वरूप पानी को बेहिसाब प्रयोग कर रहे हैं, वह हमारी आने वाली पीढ़ी के लिए अभिशाप बनने जा रहा है। पंचमहाभूतों में पानी का सबसे अधिक महत्व है, जल है तो जीवन है, सृष्टि है। लेखक ने मार्मिक संवेदना को उकेरते हुए लिखा है, 'अलबत्ता बिजली के तार पर बैठे पंछी खुले पानी के बर्तन को तलाश रहे हैं, मगर ताला लटकी प्याऊ के गंदे पानी की कुंडी भी सूखी सट्ट पड़ी है।' व्यंग्यकार ने एक-से-एक ज्वलंत मुद्दों को अपनी व्यंग्य रचनाओं में उकेरा है, जो आज नहीं तो कल अनेक बड़ी समस्याओं के रूप में समाज के लिए त्रासदी के रूप में प्रकट होने वाली हैं। 'मोबाइल के समाजशास्त्र' ने तो पूरे समाज की सूरत ही बदल दी है। अब तो छोटे बच्चे भी मोबाइल देने पर ही खाना-पीना, खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना तक करते हैं। मोबाइल का समाजशास्त्र कहता है, 'मोबाइल झूठ बोलने का नवीनतम आविष्कार है।' व्यंग्यकार लिखता है, 'दूर रहकर ही करो बात, करीब न आ जाओ।' मोबाइल बिना नाश्ते-पानी के खर्च का समाजशास्त्रीय उपकरण है। 'मानसून' के 'मान' और 'सून' का तुलनात्मक विश्लेषण बहुत सुंदर बन पड़ा है, 'मानसून जी' आप भी हिंदी के 'मान' हैं, पर अंग्रेजी के 'सून' नहीं।...पर आप उन लोगों को क्यों देखते हैं? क्यों उनको भाव देते हैं। उनकी भी चिंता पालिए, जो बरसात के अभाव में महंगाई की दर दहाई में आ जाने पर चिंता करने का फर्ज निभाते हैं। फिर भी जीडीपी की चिंता शेयर मार्केट को हिचकोले देने लगती है। वायदा बाजार के डिब्बे ऊंचे जा लटकते हैं। मंदड़िये आंसू बहाते हैं, सट्टे में पानीपतरे की धार की तरह और तेजड़िए मुनाफा डकार जाते हैं। सूखे की आशंका से बाजार का मोटापा बढ़ जाता है और आम आदमी की जेब पतली हो जाती है।' युद्ध पर्व से शांति पर्व की रेल यात्रा के संवाद गुलेरी की कहानी 'तेरी कुड़माई हो गई... ?' की याद दिलाती है जिसका कथ्य प्रेम से शत्रु को मित्रता में बदल देता है। 'राग मंदी में भैरवी प्रलोभन' व्यंग्य रचना मानसूनी बौछारों की तरह झूठे चुनावी वायदों की पोल खोलती है। सभी राजनीति दलों के घोषणावीर, हर एजेंडा जनतामुखी, सत्ता के तीर या विपक्ष के तमंचे, मगर वोटर चुनाव निपटते ही तीरों की शैया पर लेटा होता है। नेताओं की बात मौसमी स्केल को भांपकर वाम से दक्षिण या दक्षिण से वाम तक बिगुल बजाते हैं, 'राज्य सरकारों के खाली खजाने मगर घोषणाओं के नगाड़े दूनी आवाज में, अवैध कॉलोनी वैध, सरकारी कर्मचारियों को लंबित वेतनमान, स्कूलों में सीसीटीवी, कमजोर वर्ग के लिए कम-से-कम बिजली के रेट, पानी पर शुरुआती छूट, मेट्रो में महिलाओं की मुफ्त यात्रा, छात्रों को फीस से मुक्ति, तीज-त्योहारों पर महिलाओं को बस किराए में छूट। यों दो रुपए किलो अनाज, 5 में नाश्ता, 10 में खाने के नुस्खे पुराने हैं और उनके प्रतिवाद भी पुख्ता। मुफ्त कलर टीवी यानी सूचना तंत्र की मजबूती। लैपटॉप से शिक्षा का विकास। अनाज से कुपोषण की समाप्ति...' आदि-आदि।

'अखबारी कतरनों में रचना संसार' के व्यंग्य साहित्यिकों के छपासयुक्त सम्मान रोग पर प्रहार करता है। व्यंग्यकार लिखता है, 'अरे भाई, सम्मान वगैरह की कोई बात नहीं है पर हमारा यह कतरनों का रचना-संसार सामने है और अभी तो हमारे चित्रों का एलबम अलग से है। आपने ध्यान दिया होगा कि बड़े-बड़े राजनेताओं, साहित्यकारों, संगीतज्ञों, स्वामियों के अलग-अलग मुद्राओं वाले फोटो छापे जाते हैं। ये विशिष्ट मुद्राएं हैं, विशिष्ट क्षण है। ये मुद्राएं अभिव्यक्ति में वाणी को नाट्य मुद्रा बना देती हैं। शब्दों को अभिनय में ढाल देती हैं।' आज रचनाकार, रचनाकार न रहकर एक विज्ञापक बन गया है। छपास और सम्मान के सुख ने मोतियाबिंद ला दिया है। अब उसे अपने इर्द-गिर्द की

दुनिया और परिवेश से कोई सरोकार नहीं रहा है। समाज से हटकर वह सिर्फ अपने को सत्यापन कराने में जुटा दिखाई देता है। आच्छा जी एक सजग एवं सचेत व्यंग्यकार हैं, जिन्हें अपने रचनाकार मित्रों व साहित्य प्रेमियों की भरपूर फिक्र है।

संग्रह की हर रचना एक-दूसरी से जुड़ी हुई-सी प्रतीत होती है, यथा- विज्ञापनी सौंदर्य के तड़कों की इंडस्ट्री, वाट्सएप्प और विरह, वेल इन टाइम से वेलेंटाइन तक, समीक्षा के ब्यूटी पार्लर, करोड़पति हो गया मेरा मोबाइल नंबर, गुरुजी का 'सर' होते जाना, फेसबुक पर टेगिया सेना, घर-घर चैनल-हर-हर वीडियो आदि अनेक ऐसी व्यंग्य रचनाएं हैं, जो मनुष्य को यंत्रवत साबित करती हैं और साथ ही सचेत करती हैं। मनुष्यता व सकारात्मकता का पाठ पढ़ाती हुई कल, आज और कल को आलोकित करती हैं।

मर्मज्ञ व्यंग्यकार बी. एल. अच्छा की व्यंग्य रचनाएं आज के जीवन की बढ़ती प्रामाणिक-मानसिकता के खोखलेपन को उजागर करती हैं तथा संस्कृति के जीवनदायक तत्वों, संस्कारों, मूल्यों को टटोलने का संकेत देती हैं। व्यंग्यकार शब्द प्रयोग का पारखी ही नहीं, बल्कि शब्द-अर्थ की मारक व्यंजना से सुपरिचित भी हैं, जो समाज के परिवेश की विभिन्न फिसलनों को सम्मूर्त करते हैं। उन्होंने साहित्यिक वातावरण की विसंगतियों एवं असंगतियों को अपने व्यंग्यों में साकार किया है। उन्होंने पौराणिक मिथकीय प्रसंगों को व्यंग्य का बाना पहनाने में विशेष महारथ हासिल की है। व्यंग्य रचनाओं के कथ्य जीवंत और अभिव्यक्ति सशक्त बन पड़ी है। व्यंग्य उनकी रचनाधर्मिता का अनिवार्य हिस्सा प्रतीत होता है। कभी व्यंग्य स्वयं पर होता है, तो कभी सामाजिक विद्रूपताओं और विसंगतियों पर, तो कभी मनुष्य की मानसिकता को व्यापकता से चित्रित करते हैं। वस्तुत: विषयवस्तु के अनुरूप व्यंग्य को संप्रेषित करने की दिशा में विविध प्रयोग हुए हैं, यथा- पौराणिक-मिथकीय, पंचतंत्रीय, संस्मरणाली, तुलनात्मक विज्ञापन और आत्मकथ्य जैसे शैली रूपों के साथ ही प्रश्नोत्तर, पहेली, कहावत-मुहावरे, चुटकुला, आलंकारिक तथा बाल-मनोविश्लेषणात्मक आदि अनेकाधिक शैलियों का समावेश आम पाठक में सरपट दौड़ता है और सटासट मार करता है। व्यंग्यकार के मौलिक एवं लोक-कथनों के औजार और शब्दावली प्रयोग से रचनाएं प्रभावी और पाठक को आकर्षित करने वाली हैं। हां, कुछ क्षेत्रीय लोक व्यवहार के शब्द पाठक के लिए दुष्कर जरूर हैं। वास्तव में, आच्छा जी की व्यंग्य-वाणी का लोकतंत्र श्रेष्ठतर मनुष्यता की साहसिक अभिव्यक्ति और वैचारिकी से पुष्ट है।

अत: 'मेघदूत का टी. ए. बिल' व्यंग्य संग्रह के संदर्भ में कहा जा सकता है कि आच्छा जी के व्यंग्यों में अभिव्यक्तियों का यथार्थ, कल्पना की चारुता और नव्य अर्थ-व्यंजित कलात्मक भाषा-शैली का त्रिवेणी संगम है। इन व्यंग्य रचनाओं से व्यंग्यकार समाज और मनुष्य को सही दिशा देने के लिए संकल्पित और दायित्वबोध का निर्वहन करता है। यह नजरिया आज की विकट वस्तुस्थिति का साक्षात्कार कराता है तथा भविष्य को सही दिशा-निर्देश देने के लिए सक्रिय विधा का चुनाव कर, कुशल सामर्थ्य से मार्गदर्शन करता है। समीक्ष्य व्यंग्य-कृति निश्चय ही पाठकीयता के लिए रंजक और मानवीय संवेदना के लिए व्यंग्य की शल्य चिकित्सा से अपना प्रभाव छोड़ेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

*- एम.सी. कॉलोनी, लोहारू रोड़, वार्ड नं 18, केनरा बैंक के पीछे, चरखी दादरी 127306 (हरियाणा)*
*मो. 8199929206*

# हिंदी कहानियों में तृतीय लिंगी अस्तित्व की तलाश

– डॉ. रंजित एम्

आदिवासी विमर्श, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, बाल विमर्श, किसान विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि के माध्यम से समाज के मुख्य धारा से हटकर रहने को विवश लोगों को मुख्य धारा में पहुंचाने और उनकी समस्याओं और संवेदनाओं को लिपिबद्ध करने के लिए हिंदी के लेखक तैयार हुए। इस सिलसिले में आज संपुष्टि की और बढ़नेवाली शाखा है तृतीय लिंगी विमर्श।

हिंदी साहित्य में, आधुनिक काल में बलभद्र प्रसाद दीक्षित द्वारा लिखित 'चमेली जान' से तृतीय लिंगी लोगों पर आधारित कहानियों की शुरुआत हुई ऐसा माना जाता है। इसका प्रकाशन सं 1938 के चकल्लस नामक व्यंग्य पत्रिका में हुई थी। इसके बाद ढेर सारी कहानियां आने लगीं और आज अन्य विमर्शों की ही भांति तृतीय लिंगी विमर्श विकसित हो रहा है। अस्तित्वहीन जीवन जीने को बाध्य उभय लिंगी जीवों के प्रति हिंदी कहानीकार सजगता से अपना दायित्व निभा रहा है।

शिवप्रसाद सिंह रचित 'बिंदा महाराज' कहानी की पंक्तियां 'था ही कौन उसका अपना, जो पैरों में रेशमी बेड़ियां डाल कर रोक रखता। मां–बाप एक प्राण–हीन शरीर उपजा कर चले गए। मर्द होता तो बीवी–बच्चे होते, पुरुषत्व का शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुष का सहारा मिलता, बच्चों की किलकारियों से आत्मा के कण–कण तृप्त हो जाते। 'समाज में तृतीय लिंगी लोगों का हाल क्या है बता रहा है।[1] कुसुम अंसल अपनी कहानी 'इ मुर्दन के गांव में' समाज में अछूत से भी नीचे की स्थिति पर बसनेवाले तृतीय लिंगी लोगों के बारे में बताया है 'हमारे समाज में न कोई जगह है, न पहचान... हम सब अछूत से भी नीच समझे जाते हैं।'[2] मीडिया समस्याओं को समाज उर्फ सरकार के ध्यान में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले हैं। लेकिन जब समस्या उभय लिंगी लोगों का होता है तो वे भी दबे–कुचले वर्ग की आवाज को अधिकारियों तक पहुंचाने का माध्यम बनने के लिए तैयार नहीं होता। सलाम बिन रसाक की कहानी 'बीच के लोग' में इस विषय के बारे में चर्चा हुई है।[3]

डॉ. रश्मि दीक्षित की कहानी 'नियति' में स्वयं अभिशप्त जीवन बिताते वक्त भी दूसरों को दुआ देने वाले तृतीय लिंगी लोगों को रितु नामक पात्र के जरिये प्रस्तुत किया गया है। हिजड़ा होने के कारण घर से दूर रहने को विवश रितु को तृतीय लिंगी लोग अपने साथ ले जाते हैं। बाद में अपने ही घर दुआ देने के लिए जाने वाली रितु की कहानी तृतीय लिंगी लोगों के समस्याओं की और सूचना दे रही है। नियति कहानी की ये पंक्तियां 'ईश्वर ने संसार बनाया, औरत–मर्द बनाए फिर उससे हमारी बनावट में कहां गलती हो गयी ?' यह प्रश्न हमारे मन में हमेशा रहेंगे।[4]

अपनी भलाई के लिए तृतीय लिंगी लोगों से दुआएं मांगनेवाले लोग बदले में क्या दे रहे है तिरस्कार और घृणा

ही। गरिमा संजय दुबे की 'पन्ना' कहानी में लेखिका लिखती हैं, 'कोई काम पर रखे नहीं, कोई माता-पिता इस अभिशप्त को अपने साथ रखने को राजी नहीं, कोई पढाई नहीं, बेचारा मनुष्य जिए भी तो कैसे ?[5]

विस्थापन समकालीन समाज की ज्वलंत मुद्दा है। सामाजिक बहिष्कार विस्थापन का कारण बनता है। महेंद्र भीष्म जी अपनी रचना 'किन्नर कथा' में बता रहे हैं, 'प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने ही परिवार से बिछुड़ने के दंश से। समाज का पहला घाट यहीं से उस पर शुरु होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर कर दिया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है।'[7]

अंजना वर्मा ने 'कौन तार से बीनी चदरिया' में अपने ही परिवार से, अपना मान कर साथ जी रहे लोगों से ही विस्थापित होने वाले तृतीय लिंगी लोगों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। रजनी पोरवाल की कहानी 'पहली बख्शीश' की रतन, चांद दीपिका की कहानी 'खुश रहो क्लिनिक' के ऋषि, कादंबरा मोहरा की 'हिजड़ा' कहानी की नायिका रागिनी आदि कई पात्र अभी याद आ रहा है। किरण सिंह की कहानी 'संझा' में विस्थापन की पीड़ा से मुक्ति पाने में एक हद तक सफलता हासिल करने वाली वैद्य की कन्या हमें मिलेंगे।

डॉ. लवलेश दत्त की 'नेग', पूनम पाठक की 'किन्नर' आदि कहानियां पढ़ते वक्त अनिल मिश्रा जी की ये पंक्तियां याद आएंगे - 'तीसरी दुनिया के लगभग हर इंसान की कहानी एक जैसी है। बचपन के संजोए सपने ताश के पत्तों की तरह बिखर गए। तिरस्कार के कारण घर छूटा, अपने छूटे और फिर ऐसे चौराहे पर आकर खड़ा हुआ जो कहने को तो चौराहा था लेकिन रास्ता इनके लिए कहीं नहीं था। फिर एक छोटी-सी गली दिखी, शायद तीसरी दुनिया की थी, जहां इस समुदाय के टूटे इंसानों का बसेरा था, बरसात से गीली लकड़ी थी, एक वक्त की आधी रोटी थी और कभी ना टूटने वाली उम्मीद थी जिसके सहारे आज ट्रांसजेंडर लोग अपने हक के लिए लड़ रहे हैं।'[8] पहचान के लिए तड़पने को विवश तृतीय लिंगी लोगों की पीड़ा इन पंक्तियों में खींचा गया है।

शुरूआती दौर की तृतीय लिंगी लोगों के बारे में लिखी हुई कहानियों में उनकी पीड़ा और समस्याओं को ही मुख्य विषय बनाया था। समकालीन संदर्भ में शिक्षा, रोजगार, सम्मान, प्यार से वंचित तृतीय लिंगी लोगों को उससे बचने के उपाय के बारे में भी कहानीकार बताना शुरू किया है। विजेंद्र प्रताप सिंह और रवींद्र गौड़ द्वारा संपादित 'कथा और किन्नर' इसका मिसाल है।[9] थर्ड जेंडर के लोगों के बारे में समाज के नकारात्मक सोच को बदलने कहानीकारों का भूमिका महत्वपूर्ण है। आज समाज के विभिन्न क्षेत्रों में आगे आ रहे तृतीय लिंगी लोगों को अपनाने में समाज हिचकता नहीं है।

डॉ. विमलेश शर्मा की कहानी 'मन मरीचिका' में मानव से मानवी बनने की यात्रा के वर्णन के साथ-साथ उभय लिंगी लोगों को वैज्ञानिक और चिकित्सकीय राह दिखाने की कोशिश हुई है।[10] तृतीय लिंगी लोग कभी कभी अमानवीय व्यवहार करने की खबरें भी हमे मिलते है। इसके कारण के बारे में लव कुमार लव जी की 'अंधेरे की परतें' नामक कहानी में चर्चा हुई है। इसमें लेखक सिद्ध करता है कि शिक्षा की कमी ही इसका कारण है।

चांद दीपिका की कहानी 'खुश रहो क्लिनिक' में ऋषी नामक उभय लिंगी पात्र का डॉक्टर बनने की यात्रा व्यक्त करने वाला है।[11] तृतीय लिंगी समुदाय पर आधारित पहली कहानी संग्रह, राकेश शंकर भारती की 'इस जिंदगी के उस पार' की कहानी, 'मेरी बेटी' में मुन्नी को पढ़ा-लिखा कर डॉक्टर बनाने की बात का जिक्र हुआ है। उचित मार्गदर्शन और सम्मान मिलने पर तृतीय लिंगी लोग प्रगति के पथ पर आगे बढने की सूचना यह कहानी समाज को देते है।[12] उसी तरह सोमा

भारती द्वारा लिखित कहानी 'गली आगे मुड़ती है' कड़ी मेहनत से फैशन डिजाइनर बननेवाले नील भी यहां स्मरणीय है।

महेंद्र भीष्म जी की कहानी 'त्रासदी' में विधवा रति को बलात्कार से बचाने के चक्कर में घायल होनेवाली सुंदरी और रती के बेटे दीपक आदि पात्रों के माध्यम से सामजिक हिजड़ेपन का सवाल उठाते हुए, अपने पाठकों से पूछ रहे हैं, 'असल में हिजड़ा कौन है?[13] लवलेश दत्त की कहानी 'नवाब'14 के मुख्य पात्र नवाब को झाड़ियों में फेंकी छोटी बालिका मिलती है और वह उसे पालने का निर्णय करता है। तब सभ्य कहे जानेवाले लोग उस पर चोरी का आरोपण उठाता है। यहां भी लेखक महेंद्र जी का सवाल ही उठा रहा है असल में हिजड़ा कौन है? श्रीकृष्ण सेनी की कहानी 'हिजड़ा', में भी यही सवाल उठाया है।

'ट्रांसजेंडर', 'बधिया' जैसी कहानियों में हिजड़ा बनाये जाने वालों के बारे में शालिनी, डॉ. देवराज, राधेश्याम, जनार्दन, राजकुमार आदि पात्रों के माध्यम से राकेश शंकर भारती जी ने किया है।[15]

हिंदी कहानीकारों ने समाज और तृतीय लिंगी लोगों के रिश्ते के सकारात्मक और नकारात्मक तत्वों के बारे में अपनी रचनाओं में चर्चा की है। अपने देह के कारण उसके मनोवेगों के साथ, अपने परिवार के साथ और समाज के साथ संघर्ष करने को विवश, उभयलिंगी लोगों के बारे में सामाजिक जागरूकता फैला कर समाज की मनोवृत्ति बदलने और मानवीय दृष्टिकोण बनाने में ये कहानियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बिना किसी हीन भावना के गरिमापूर्ण जीवन चलाने के लिए तृतीय लिंगी लोगों को मदद देने के लिए विभिन्न सरकार भी आज तैयार हो चुके है।

**संदर्भ ग्रंथ :** (1) थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियां, सं. डॉ. एम. फिरोज खान, शिवप्रसाद सिंह, बिंदा महाराज, पृष्ठ 26 (2) थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियां, डॉ. एम.फिरोज खान कुसुम अंसल, इ मुर्दन के गांव, पृष्ठ 56 (3) वाङ्मय त्रैमासिक पत्रिका (जनवरी-मार्च 2017), संपादक : डॉ. एम. फीरोज पृ. 18 (4) थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियां, सं. डॉ. एम.फिरोज खान, नियती : डॉ रश्मी दीक्षित पृ. 92-93 (5) पन्ना बा, गरिमा संजय दुबे, वाङ्मय त्रैमासिक पत्रिका (जनवरी-मार्च 2017) पृ.120 (6) किन्नर कथा- महेंद्र भीष्म सामयिक प्रकाशन, 2016 पृष्ठ 41-42 (7) थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियां, सं. डॉ. एम.फिरोज खान, संझा किरण सिंह पृ 65 (8) सामयिक सरस्वती पत्रिका, अनिल मिश्र अप्रैल सितंबर 2018, पृष्ठ 63 (9) कथा और किन्नर, विजेंद्र प्रताप सिंह और रवींद्र गौड़, अमन प्रकाशन 2018 (10) थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियां, सं. डॉ. एम.फिरोज खान, डॉ. विमलेश शर्मा की कहानी 'मन मरीचिका पृ.92 (11) वाङ्मय पत्रिका : खंड एक, थर्ड जेंडर हिंदी कहानियां, चांद दीपिका, खुश रहो क्लिनिक, पृष्ठ 139 (12) इस जिंदगी के उस पार, राकेश शंकर भारती, अमन प्रकाशन, कानपुर 2019 (13) वाङमय पत्रिका : खंड एक, थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियां, महेंद्र भीष्म त्रासदी, पृ. 108 (14) वाङमय पत्रिका : खंड एक, थर्ड जेंडर : हिंदी कहानियां नवाब लवलेश दत्त, 2018 ,पृ 101 (15) इस जिंदगी के उस पार, राकेश शंकर भारती, अमन प्रकाशन कानपुर 2019.

*- सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, एम.ई.एस कल्लटी कॉलेज, मणारककाड 678583 केरल*

*मो. 9387441300*

**डायरी** ( अंतिम भाग )

# बचपन के दिन

**अशोक भाटिया**

अगर हमारे पास कुछ वक्त बच जाता तो हम बड़े स्कूल के दर्शन करने निकल जाते। बड़ा स्कूल चौथी कक्षा से शुरू होता था और छोटे स्कूल से कोई डेढ़ सौ गज की दूरी पर ही था। एक बार मैं अपने दोस्त के साथ बड़े स्कूल की तरफ जा रहा था, तो रास्ते में कोई मास्टरजी मिल गए। मैंने उनको पहले नहीं देखा था। मेरे दोस्त ने कहा, 'मास्टरजी नमस्ते।' मेरे मुंह से बेसाख्ता निकल गया, 'छोले खाओ सस्ते, पानी पीओ ठंडा, सर में मारो डंडा।' कहकर मैं तो फौरन वापिस मुड़ा और अपने स्कूल पहुंचकर दरवाजे के पीछे जाकर छुप-सा गया; कहीं मास्टरजी मुझे पकड़ ही न लें।

सभी बच्चे दो क्लास पास कर चौथी कक्षा में इसी बड़े स्कूल में अपने आप दाखिल हो जाते थे। बनारसी दास हाई स्कूल यानी बी.डी.स्कूल। स्कूल में प्रवेश करते ही बाएं तरफ पहला कमरा चौथी क्लास का होता था। बनारसी दास हाई स्कूल में चौथी क्लास का एक ही सेक्शन था। मैं चौथी क्लास में सौ में से बयासी नंबर लेकर प्रथम आया था। मेरे साथ और पांच बच्चे भी प्रथम रहे थे। हमारे अध्यापक का नाम बाबू राम था। सभी विषय वही पढ़ाते थे। लंबा-चौड़ा डील-डौल, हमेशा सफेद कुरता-पायजामा पहनते। साल-भर कभी किसी बच्चे को उनसे डांट नहीं पड़ी, न कभी उन्हें गुस्सा आया। उनकी दो बातें याद हैं। एक तो वे कहा करते थे कि मछली खाया करो, तब तुम रेल के इंजन को भी रोक सकते हो। दूसरे, जो बच्चे पढ़ने में तेज होते थे, उनको चौथी कक्षा का काम कराने के बाद रोज पांचवीं का हिसाब भी पढ़ाते थे। हम चार-पांच ऐसे ही छात्र थे। हमें पीछे कोने में अलग बिठाया जाता था।

कुछ बातें ऐसी घटित हो जाती हैं, जिनके बारे तब पता नहीं चलता, लेकिन बाद में सोचकर ग्लानि होती है कि ऐसा क्यों किया? घर से मां आधी छुट्टी के लिए पौने (रुमालनुमा कपड़े) में दो रोटी और सब्जी बांधकर देती थी। कभी सब्जी न होती तो दस-पंद्रह पैसे दे देती कि चने लेकर रोटी खा लेना। एक बार आम पापड़ खाने का लालच आ गया। चुपके से रोटी नाले में फेंक दी और पंद्रह पैसे का आम पापड़ लेकर बड़े स्वाद से खाया। आज इस प्रसंग की चाहें तो नैतिक, दार्शनिक धरातल पर जो मर्जी व्याख्या करें, पर बाल-मन तो बाल-मन ही होता है।

जीभ का स्वाद जो न करा दे, वही कम है। और बचपन तो खाने-खेलने का दूसरा नाम है। चौथी या पांचवीं क्लास में होगा तब। पंद्रह पैसे की पचास ग्राम मीठी फुलियां आती थीं तब। मैं करीब रोज ही मां से पैसे मांगता कि फुलियों का प्रसाद लाना है। मां धरम के नाम पर फौरन पंद्रह पैसे देती। मैं बाहर चौक पर नककटे हलवाई (यह नाम हमने रखा हुआ था, उसकी नाक थोड़ी कटी हुई थी) से फुलियां लेता, राम या किसी भी मूर्ति को भोग लगाता और थोड़ी-थोड़ी सबको देकर बड़े चाव से सारी खा जाता। इसी तरह घर से थोड़ी दूरी पर एक घर में हर सोमवार को

सत्यनारायण की कथा होती थी। मैं और सावित्री वहां बिला नागा जाते, क्योंकि बर्फी का प्रसाद मिलता था। खाने के बारे मैं शुरू से ही उत्साहित रहा हूं,इस क्षेत्र में अनुशासित तो साठ पार करके भी ढंग से नहीं हो पाया। अच्छा याद आया, सावित्री से मेरी बहुत पटती थी, पर उससे छोटी सुलोचना से नहीं बनती थी। उसे बचपन में मैंने पीटा भी बहुत। इसके कई कारण थे। मां उसे थोड़ी दही बिलोकर और थोड़ा पानी डालकर अधरिड़का बनाती और सिर्फ सुलोचना को पिलाती। मुझे इस बात से बहुत चिढ़ होती थी। कुछ-कुछ दिन बाद मां को और सुलोचना को भी मैं इस बात के ताने देता रहता, लेकिन कोई असर नहीं हुआ। या तो मुझे भी मिलता, या उसे भी न मिलता, तभी मुझे तसल्ली होती कि न्यायपूर्ण बात हुई है। इसी तरह एक और प्रसंग था। बड़े भाई साहब ऊपर के कमरे में पढ़ते थे। एक बार कमरे की परली तरफ बाहर रखी लकड़ियों के नीचे से सफाई हो रही थी, तो बहुत सारे मूंगफली के छिलकों का ढेर मिला। पता चला कि भाई साहब सुलोचना को मूंगफलियां खिलाया करते थे। ऐसी बातों से सुलोचना से मैं ईर्ष्या करता था और किसी बहाने उसे पीटकर अपनी भड़ास निकाल लेता था। हालांकि बाद में फिर सुलोचना से बनी भी बहुत, क्योंकि वह भी जिंदगी में बेकार की लकीरों को मेरी तरह ही तोड़ने में यकीन करने लगी थी, तोड़ने भी लगी थी। पर वे बचपन से बाद की बातें हैं।

चलो, फिर लौटें स्कूल की तरफ। चौथी क्लास की गर्मियों की छुट्टियां हुईं। दिल्ली में सुशील मामाजी की शादी थी। माताजी ने कहा कि पहले स्कूल का काम निबटाओ, तो ही लेकर जाएंगे। मुझे 490 सवाल मिले थे। दिल्ली जाने का चाव इतना था कि दो दिन में सारे सवाल उड़ा दिए। सीढ़ियां चढ़ते हुए दाएं तरफ गली की ओर छोटी-सी खिड़की खुलती थी, ठीक वैसी, जैसे काशीनाथ सिंह की कहानी 'सदी का सबसे बड़ा आदमी' में खुलती है। वहीं यह काम निबटा दिया था। दिल्ली गए, तो शादी के बाद ओम मामाजी के यहां से छोटे आकार का कैरम बोर्ड मिल गया था। हम घर आकर गर्मियों की दोपहरी में कैरम बोर्ड खेलने लगे थे। मां अगर सोई होती तो हमें आराम करने को कहती। पर हम बड़े ही अताही (उच्छृंखल) थे, खासतौर पर मैं तो टिककर बैठ ही नहीं सकता था। एक दिन मां ने कई बार समझाया कि उसे आराम करने दो और कैरम खेलना बंद करो। हम दो-तीन मिनट रुकते और फिर शुरु हो जाते। मजबूर होकर मां ने उठकर छतरी ली और उसकी नोक से कैरम में पांच छेद कर दिए। एकबारगी तो हम डर गए। लेकिन अगले दिन से कैरम को थोड़ा ठीक कर फिर शुरु हो गए। आज एहसास होता है कि मां को हम कितना तंग करते थे। सुबह उठकर मां नाश्ता-पानी ही नहीं बनाती, हमें कलम घढ़कर देती, हमारे बूट पालिश करती, बहनों की कंघी करती और उन पर किसी बात का गुस्सा आता, तो साथ में पीठ पर धौल भी जमाती जाती थी। हम कई बार एक-दूसरे की शिकायत करते तो मां गुस्से में पहले एक की छितरोल करती। फिर शिकायत करने वाले को भी यह कहकर दो-तीन पड़ जाते —'हुन ठाड पई आ।' (अब ठंड पड़ गई तुझे)!

मां से हम ज्यादा नहीं डरते थे। पिताजी से बड़ा डर लगता था। वे सुबह-सुबह साढ़े सात बजे दूकान के लिए निकल जाते और रात आठ बजे के आसपास ही आते। उनके आते ही घर में अनुशासन लौट आता। पिताजी का पलंग बैठक में लगा था। उनके आने के बाद हम पलंग को छू भी नहीं सकते थे। पिताजी के पास इंग्लिश साइकिल थी, जो आम साइकिलों से थोड़ी बड़ी थी। उसमें एक पहिए के साथ डायनमो लगा था, जिसे जोड़ने पर आगे बल्ब जल उठता था। हमारे लिए यह बहुत खास था। पिताजी इतवार को पड़ोसी की दूकान सरदार मिल स्टोर पर ताश खेलने जाते और खाने तक लौटते। कभी दुबारा भी जाते। जब दोपहर के बाद घर पर होते तो रिकॉर्ड में गाने सुनते। उन दिनों बड़े रिकॉर्ड पर बड़ा

तवा रखकर आठ-दस बार हैंडल घुमाना होता था, फिर तवे पर सूई टिकाई जाती थी। एक तवे पर एक ही गाना होता था। एक गाना पिताजी को बड़ा पसंद था- 'मज्झ गां वालया, बारां पैसे नवें-नवें मेन दवानी ही चा दे।'(हे गाय-भैंस वाले, तेरे पास बारह नए पैसे हैं। मुझे द्वन्नी ही दे दे।') मैं बाहर खेल रहा होता तो पिताजी मुझे खासतौर से यह गाना सुनाने के लिए बुलाते। इसी तरह वे उर्दू अखबार 'हिंद समाचार' पढ़ा करते थे। इतवार को उसमें चुटकुले आते, तो मुझे बुलाकर जरूर सुनाते।

एक वाकया याद आ गया। घरों में जो चिट्ठियां आती थीं, सब उसे संभालकर रखते थे। बिजली का बिल तो तार में ही पिरोकर रखा जाता था। हमारे घर में सारी पुरानी चिट्ठियां एक जगह ढेर के रूप में पड़ी रहतीं। एक बार जाने मुझे क्या सूझी कि सारी चिट्ठियां लैटर बॉक्स में डाल आया। अगले दिन डाकिया आया तो उसके हाथ में चिट्ठियों का ढेर देखकर आसपास के घरों से औरतें निकल आईं। सबको मेरी कारिस्तानी का पता चल गया। किसी ने कुछ नहीं कहा। यह करतब था या करतूत, कहना मुश्किल है।

थोड़ा बड़ा होने पर घर से हमें कुछ जेब-खर्ची मिलने लगी थी। कितनी, अब कुछ याद नहीं। पर मां पैसे देकर कहा करती थी कि बचत किया करो। भला हमारा बचत से क्या वास्ता! हमें एक-एक बुगनी (गोलक) भी ले दी थी पैसे बचाने के लिए। एक दिन सुलोचना ने दो नए पैसे सुबह अपनी बुगनी में डाले। शाम को ही उसे निकालकर बाहर वलैती राम की रेहड़ी से मीठे शर्बत का गोला खा आई। मेरे मन में भी बचत का ख्याल आया, हालांकि उसके मकसद का मुझे दूर तक कुछ पता नहीं था। एक दिन मक्की की रोटी जो खाने से बच गई, उसे एक डिब्बे में रख लिया और मां को इस बचत बारे बताया। मां कुछ नहीं बोली। फिर दीवाली के रोज चीनी के खिलौने मिले, तो चीन का एक आदमी मैंने बचाकर रख लिया। रोज शाम वह डिब्बा खोलता और एक बार उस खिलौने को चाटकर फिर रख देता।

उन दिनों मैदान में मेले बहुत लगते थे। वहां भीड़ भी बहुत होती। एक बार मां ने हम पांचों को पैसे बांटने शुरु किए, तो बारी-बारी से सबको कुछ पैसे देती गई। बड़े को कुछ ज्यादा मिलते थे। यह सिलसिला खत्म हुआ तो मेरे हिस्से में कुल तैंतालीस पैसे आए। मां ने ये पैसे बड़े भाई को देकर कहा कि हम दोनों मेले में इकट्ठे जाएंगे। वही सी.बी.हाई स्कूल के मैदान में मेला लगा करता था। भाईसाहब ने पंद्रह पैसे के छोले खिलाने से शुरु किया और मैं खर्च हो रहे पैसे गिनता गया। आखिर में मेरे कुल चालीस पैसे खर्च हुए। बाकी के तीन पैसे बड़े भाईसाहब की तरफ अब तक बकाया हैं, जो मैं उन्हें कई बार याद करा चुका हूं। अभी तक मिले नहीं हैं।

हमारी बैठक में आठ बैंड का मरफी का रेडियो होता था। पकिस्तान से पैंसठ की लड़ाई लगी, तो रोज शाम को आठ बजे के समाचार सुनने के लिए ज्यादातर घरों के आदमी हमारी बैठक में इकठ्ठा होते थे। तब मुझे अपने रेडियो पर गर्व होता। शाम के वक्त पिताजी के आने से पहले कभी-कभी मैं रेडियो को शार्ट वेव्स पर लगाकर घुमाता और सुनने की कोशिश करता। कभी कुछ समझ तो नहीं आया, लगता कि अंग्रेजी में कुछ बोल रहे हैं। ऐसा कर मैं बड़ा-बड़ा महसूस करता।

हमारे मोहल्ले के बाहर सड़क पर तेली का बैल अक्सर बंधा रहता था। तेली का घर साथ वाले मोहल्ले के शुरु में ही था। जिस दिन वह बैल मुझे न दीखता, तो अंदर उसे तेल के कोल्हू के आसपास चक्कर काटते हुए देख आता। उसकी आंख पर कटोरीनुमा पट्टी-सी बंधी होती, जिसका अर्थ तब हमें न तो पता था, न ही जानने की कोई जिज्ञासा। कभी-कभी बाहर खड़े उस बैल के सिर पर मैं अपनी गाय की तरह हाथ फेरने लगता। ऐसा करते हुए मुझे एक बार उसने सींगों से उठाकर फेंका, तब मालूम पड़ा कि यह हमारी गाय नहीं है। वैसे वह तेली हर साल रामलीला में रावण बना करता था। उसे देखकर हमें

हमेशा रावण ही याद आता था। वैसा ही डीलडौल। वह हर दीवाली की रात ठीक बारह बजे एक मोटा-सा सूतली बम पास वाले चौक पर बजाता था,जिसका जबरदस्त धमाका सुनने की हम लड़कों को आदत हो गई थी। एक-दो साल बाद हम भी यह नजारा देखने के लिए बारह बजे से पहले उस चौक पर जमा हो जाते थे। सन पैंसठ-छियासठ में वह बम एक रुपए का आता था।

मैं तब छठी क्लास में होगा। मां के पास वक्त नहीं था। एक बार मुझे अपने बूट पालिश करने का मौका मिल गया। आता तो था नहीं। तो बूटों पर पालिश की मोटी पार्ट जमा दी। तभी भाई आ गया। उसने देखा तो बूट उठाकर एक फोटो के पीछे छिपा दिए और बोला- 'आ लेने दे पिताजी को।' मेरी जान सूखने लगी। पर फिर कुछ नहीं हुआ। लगे हाथ बता दूं कि हमारी बैठक में दीवार पर चारों तरफ एक पट्टी थी, जिस पर देवी-देवताओं के शीशे में मढ़े चित्र लगे होते थे। एकाध चित्र सुंदर युवती का भी होता था। उनके नीचे कुछ केलिन्डर भी पंक्तिबद्ध सजे होते थे।

हमारा स्कूल शहर के अच्छे स्कूलों में गिना जाता था। तब अंग्रेजी पांचवीं क्लास से पढ़ाई जाती थी। मुझे अंग्रेजी अजीब लगती थी। वैसे भी पांचवीं से मेरा मन पढ़ने में कम और खेलने में ज्यादा लगने लगा था। फिर भी नंबर ठीक-ठाक आ जाते थे। पर छमाही इम्तहान हुए, तो अंग्रेजी में पचास में से पच्चीस नंबर आए। कम इसलिए लगे कि क्लास में अध्यापक द्वारा पूछने पर कई लड़कों के पैंतीस नंबर आए थे। लगा, कि रिपोर्ट कार्ड घर दिखाऊंगा तो डांट पड़ेगी। एक-दो लड़कों से पता चला कि नंबर एक एसिड से मिटाकर और लिखे जा सकते हैं। लड़कों से एसिड ली और अंग्रेजी के नंबरों पर लगा दी। उसने तो सतह को बेतरह खराब कर दिया। मैं एकबारगी घबरा गया। कोई और हल न निकलता देख उस पर पैंतीस लिखकर घर पर डरते-डरते कार्ड दिखाया। किसी ने कुछ नहीं कहा तो जान में जान आई। स्कूल में मास्टरजी ने भी कुछ नहीं कहा। शायद देखा ही न हो।

आठवीं-नवीं में आकर मुझे फिल्में देखने का चाव चढ़ा। फिल्म देखने को तब अच्छा नहीं माना जाता था। मेरी हिम्मत भी नहीं थी कि मां या पिताजी को यह बात कह सकूं। हां, नजदीक के मिनर्वा, निगार और निशात सिनेमाघरों में लगे पोस्टर बड़े ध्यान से नियमित देख आता था, मानो यह भी पाठ्यक्रम का एक जरूरी हिस्सा हो। फिर चोरी-छिपे सिनेमा देखना शुरू किया। इतनी बड़ी स्क्रीन पर चलती-बोलती तस्वीरें देखकर मन खुश हो जाता। कहानी न तो समझ आती थी, न ही समझने की कभी कोशिश की थी। अभी दो-तीन पिक्चरें ही देखी थीं कि मामला गड़बड़ हो गया। मैं मेटिनी (दोपहर के) शो में 'हमराज' फिल्म देखने गया हुआ था। इंटरवल में बाहर कुछ खाने को निकला तो देखा, हमारी दूकान पर काम करने वाला पप्पू भी दूकान से भागकर फिल्म देखने आया हुआ है। मुझे देखकर वह भाग खड़ा हुआ। रात को पिताजी ने घर पहुंचते ही मुझसे पूछा- 'आज कहां गया था?' मैंने छूटते ही कहा -'दोस्त के घर।' बड़े विश्वास के साथ झूठ बोला मैंने। पर पिताजी छूटते ही पूछ बैठे- 'कहां रहता है वो?' ये सामने गली में। मैं एकदम बोल गया। पिताजी ने एकदम कहा- 'मुझे ले चलेगा उसके घर?' अब तो मुझे काटो तो खून नहीं। तब माजरा समझ आया कि पप्पू खुद दूकान से फूटकर आया हुआ था, पर शिकायत मेरी लगा दी। वो तो मां ने फौरन हस्तक्षेप करते हुए पिताजी से पूछा- 'की गल्ल है, किद्धर गया सी?' (क्या बात है, किधर गया था?) पिताजी ने गुस्से में कहा- 'उल्लू दा पट्ठा खेड वेखण (खेल देखने) गया सी।' खैर, बात आई-गई हो गई। घरवालों को मामला गंभीर लगा, तो उन्होंने तय किया कि मुझे जब कोई फिल्म देखनी होगी तो पहले घर पर बताऊंगा। वो पैसे देकर भेज देंगे। अंधे को क्या चाहिए, दो आंखें। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। कैपिटल सिनेमा पर विनोद खन्ना की फिल्म 'अचानक' लगी हुई थी। पर उस पर माता-

पिता का राजी होना मुश्किल था। निगार पर 'नानक नाम जहाज है' लगी थी। मां को कहा कि 'नानक नाम जहाज है' फिल्म देखनी है। मां बहुत खुश हुई कि बेटा धार्मिक फिल्म देखने जाएगा। सिर पर हाथ फेरा, खुशी से पैसे दिए और मैं 'अचानक' फिल्म देख आया। आकर नानक नाम जहाज वाली फिल्म के एक-दो गीतों के बारे बता दिया, जो मैंने पहले से सुन रखे थे।

यहां एक-दो प्रसंग याद आ रहे हैं। एक तो आधी छुट्टी के वक्त हम टीलो बड़े ही चाव से खेला करते थे। फटाफट रोटी किसी तरह अंदर डाली और स्कूल के बीचोबीच पहुंच गए। टीलो में आधे-आधे लड़के दो हिस्सों में बंट जाते थे। आधों ने आधों को पकड़ना होता था। एक-एक करके या दो मिलकर या सारे मिलकर पकड़ें, उनकी मर्जी। हरीश की और मेरी रेस बहुत बेहतर हुआ करती थी। हम सबसे बाद में ही हाथ आते थे। मेरा दोस्त रविंदर ढीला ही दौड़ता था। पर क्लास में हम हमेशा ही साथ-साथ बैठते थे। शरारतें मैं शुरु से ही खूब करता था।

पहली क्लास में जब मास्टरजी ने पढ़ाया- 'सोहन के घर में बहुत चूहे हो गए थे।' तो क्लास में सोहन नाम के लड़के को मैं रोज यही कहकर चिढ़ाता था कि सोहन के घर में बहुत चूहे हो गए थे।' फिर नवीं-दसवीं कक्षा में जब पढ़ा कि कवि तुलसीदास की मां का नाम हुलसी था, तो मैं क्लास के शरीफ-से लड़के तुलसी को हर रोज यही बात कहता कि तुलसी की मां का नाम हुलसी था।' उसने कभी कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। फिर अपने नजदीकी दोस्त रविंदर को भी कैसे छोड़ता। उसके पिता का नाम तीरथ राम था। मैं उसके पिता का नाम उल्टा करके उसे कई बार कहा करता — 'थरती मरा।' उसने कभी कुछ नहीं कहा। एक बार किसी बात पर उसने मुझे पटों में जी की निब वाला होल्डर मार दिया। मैंने मास्टरजी से शिकायत कर दी। उसे दो थप्पड़ पड़े। फिर उसने शिकायत की - ये कहता है, तेरा बाप मरे।' फिर एक थप्पड़ मुझे भी पड़ा। शायद यह पहला थप्पड़ था जो मैंने खाया था। पर इससे आगे का भी किस्सा है। हिंदी के सख्त-मिजाज मास्टर मधुमदन आधी छुट्टी के फौरन बाद की क्लास में व्याकरण सुना करते थे। हम टीलो खेल-खेलकर थके होते थे। एक बार भिन्नार्थक शब्दों में से मुझसे पूछा - विजन और व्यजन का अंतर बताओ।' विजन का तो बता दिया कि सुनसान, पर व्यजन का याद नहीं आया। इसका अर्थ था- हाथ वाला पंखा। मुश्किल था, पर नहीं आया, तो दो डंडे पड़े टिकाकर। पहली बार डंडा खाया और खूब जोर का खाया। हाथों पर गहरे निशान पड़ गए। घर जाकर छिपाता फिरा, कि कहीं और डांट न पड़ जाए। बस वो दिन और कॉलेज का आखिरी दिन, फिर हिंदी पढ़ने में कभी रत्ती-भर कोताही नहीं की। एम.ए. में यूनिवर्सिटी में पहला स्थान पाया। पर मधुमदन जी और उनके दो डंडे कभी नहीं भूले, आज भी याद हैं। बहुत साल बाद जब मुझे कॉलेज प्राध्यापक बने हुए भी कई वर्ष बीत गए थे, तो मैं मास्टरजी से मिलने गया, जिन्होंने सेवानिवृत्ति के बाद बेटे के साथ सिविल अस्पताल के सामने केमिस्ट की दूकान खोल ली थी। तब मैंने अपनी एक किताब भी उन्हें दी।

हमारे स्कूल के बाहर किताबों की कई दुकानें थीं। बैनी की दुकान सबसे ज्यादा चलती थी, फिर शर्मा बुक डिपो था। थोड़ी दूर बग्गा बुक शॉप थी। बग्गा देश-विदेश की टिकटें रखता था। छोटी पारदर्शी थैली में दूसरे देशों की टिकटों का आकर्षण मुझे कई बार आधी छुट्टी के समय बग्गा बुक डिपो के आगे पहुंचा देता। यह खजाना इकठ्ठा करके मैं अपने को बड़ा-बड़ा महसूस करने लगा था। बड़ा तो तब भी लगा, जब अंग्रेजी के चार-पांच नए शब्द पढ़ लिए थे। इसी तरह पांचवीं में हिंदी की किताब के एक पाठ में कोचवान, गाड़ीवान, विराजमान जैसे शब्द पड़े, तो भी लगा कि काफी हिंदी आ गई है। हमारे घर के पहली मंजिल के कमरे के

ऊपर चौबारा था, जिसकी तीनेक फुट ऊँची बाउंड्री बनी हुई थी। कई बार वहां उसके कोने में लकड़ी का बड़ा फट्टा लगाकर नीचे बैठकर पढ़ने का नाटक करता, तब भी अपने को बड़ा-बड़ा महसूस करता था। वहां मैं अपने को बड़ा महसूस करने के लिए ही बैठता था।

स्कूल से छुट्टी होने पर हम दो दोस्त घर को इकट्ठे ही आते थे। दोस्त वही रविंदर था, जो मोहल्ले के सामने थोड़ा आगे की गली में रहता था। हम दोनों वापसी पर लोगों के चेहरे देखते और हंसते जाते। हमें उन चेहरों पर कुछ न कुछ अजीब दीख जाता। यह हमारा रोज का काम था। रस्ते में चादरों पर ठप्पे लगाने वाली एक दुकान पड़ती थी, जिसका अंग्रेजी में नाम था - माय शॉप।' हम रोज दुकान के भीतर सरदारजी को चादरों पर ठप्पे लगाते देखा करते। एक बार हमने कह दिया - 'सरदार जी, दिस इज माय शॉप। आप बाहर आओ।' वो तो उठकर सचमुच बाहर आ गए। हम तो सर पर पैर रखकर भागे। उसके बाद उसे दोबारा कभी छेड़ने की हिमाकत नहीं की।

कुल मिलाकर अपने बचपन की कारगुजारियों को याद करते हुए यही कह सकता हूं कि किसी तरह की चिंता-फिकर से दूर, खाना-पीना, हंसना-खेलना और मौज करना ही बचपन है। तब दूर-दूर तक कोई भी नहीं जानता था कि खाने-खेलने के एकमात्र लक्ष्य वाला यह बच्चा कभी गंभीरता से पढ़ने-लिखने को ही अपने जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य बना लेगा।

*- 'बसेरा', 1882, सेक्टर-13, करनाल 132001 हरियाणा*
*मो.9416152100* ashokbhatiahes@gmail.com

**लघुकथा**

# आंसू

**- अंतरा करवड़े**

'तुम्हारी हिम्मत को सलाम है पूजा बेटी। आज हमारे भैया जिंदा हैं, तो तुम्हारी वजह से।' बुआ आशीष दे रही थी। राखी बांध रही थी।

उपहार की दामी साड़ी देख आंखों में आई चमक को, तैर रहे आंसुओं से ढंकने का असफल प्रयास किया उन्होंने।

'सचमुच भाभी, हम तुम जैसी कोई होती, तो अपने पिता की इस बीमारी में होश ही खो बैठती। सुना है, जब हफ्ता भर के लिये डॉक्टरों ने भी हाथ खड़े कर दिये थे, तब भी पूजा, बिना आंसू गिराये डटी रही। यहां-वहां से पैसों का इंतजाम किया, डॉक्टरों से सलाह की, अस्पताल बदले और हमारे भैया को मौत के मुंह से खींचकर ले आई। हमने तो कइयों को कहते भी सुना, कि बड़ी कठकरेजी है बिटिया।' बुआ ने पानी में कंकड़ डालकर लहरें गिनना चाहा।

'बिना दिखाए हम भी खूब सिसकते रहे बुआ। रही बात हमारे कठोर कलेजे की, तो आप भी जानती हैं, कि मरने और रोने, दोनों में कंधे की जरूरत होती है। हमारे आस-पास के सभी कंधे, पैसे, स्वार्थ, दिखावे और दुनियादारी ने कमजोर कर दिये थे। तुम ही बताओ, कलेजे के आंसू उलीचते कहां?'

एक सन्नाटा सा छा गया था, और पता नहीं क्यों, बुआ को भावनावश, भतीजी के नेग के लिफाफे में भरे हजार रुपये, अब ज्यादा लगने लगे थे।

***संपर्क :*** *117, श्रीनगर एक्स., इंदौर 452018 म.प्र. मोबाइल 9752540202*

साक्षात्कार ...

बालस्वरूप राही

सफलता 'सरोज'

# जमाना मेरे साथ गाए तो गाए

(बालस्वरूप राही से सफलता 'सरोज' की बातचीत)

**सफलता सरोज** : गीत किसे कहते हैं? इसका वास्तविक स्वरूप क्या है?

**बालस्वरूप राही जी** : भाव-प्रवण, रस-प्रवण, लयात्मक कविता गीत की कोटि में आती है। गीत के बारे में मैंने एक जगह लिखा है- 'गीत किसी खिलते गुलाब की पांखुरी/गीत किसी मोहन की मोहक बांसुरी/गीत किसी मंदिर का पावन दीप है/जिसके आगे विनत अंधेरा आसुरी/गीत व्याप्त है हर कोमल संबंध में/गीत महकता है हर पावन गंध में/कह सकता है कौन कि पहली बार ही/वाणी मुखरित नहीं हुई थी छंद में।'

**सफलता सरोज :** गीत की भाषा कैसी होनी चाहिए?

**राही जी :** जो सीधे दिल में उतर जायें इतनी सरल, सहज, सरस होनी चाहिए।

**सफलता सरोज :** आपके गीत लेखन की शुरुआत कैसे हुई?

**राही जी :** शेरो-शाइरी का शौक मुझ में बचपन में ही पैदा हो गया था। अपने सात भाइयों में मैं सब से छोटा हूं। मेरी एक बहन भी थी जो मुझ से डेढ़-दो वर्ष बड़ी थी। मेरे कई बड़े भाई उर्दू शाइरी के शौकीन थे। हिंदी में जिसे अंत्याक्षरी कहते हैं, उर्दू में वो बेतबाजी कहलाती है। मेरे कई बड़े भाई अंत्याक्षरी खेलते थे। मैं पास बैठा उनकी शेरो-शाइरी ध्यान से सुनता था। पांचवीं, छठी कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते मीर, गालिब, जौक, दाग, इकबाल आदि से अच्छा खासा परिचय हो गया। दो शेर तो मेरे दिलो-दिमाग पर नक्श हो गए - 'सब कुछ खुदा से मांग लिया तुझ को मांगकर/उठते नहीं है हाथ मेरे इस दुआ के बाद।' बड़ा होकर मैंने एक शेर कहा है- 'खौफ या लालच मुझे हर्गिज झुका सकते नहीं, मैं झुकूंगा गोद में बच्चा उठाने के लिए।' तो ये खुद्दारी की सौगात उर्दू शायरी से मुझे बचपन में ही मिल गई थी। मेरा दूसरा पसंदीदा शेर था- 'मगस को बाग में जाने न देना, के नाहक खून परवानों का होगा।'

शहद की मक्खी बाग में जाएगी, तो शहद का छत्ता बनाएगी। शहद का छत्ता बनेगा तो उसमें से मोम भी निकलेगा, मोम निकलेगा तो मोमबत्ती जलेगी, मोमबत्ती जलेगी तो बिना बात परवानों का खून होगा।

ग्यारह-बारह साल की उमर तक पहुंचते-पहुंचते शाइरी मेरा ओढ़ना-बिछौना बन गई। स्वाभिमानी मैं शुरू से रहा हूं। मेरे लड़कपन का एक शेर देखिए - 'न मैं गा सकूंगा जमाने के स्वर में/जमाना मेरे साथ गाए तो गाए।'

मेरे पिताजी बच्चों के फिल्म देखने के खिलाफ थे। एक बार मेरे सारे दोस्त तो फिल्म देखने चले गए, मैं घर में कैद रह गया। तो उस समय मेरे दिमाग में यह मिसरा आया- 'लगा दो आग दुनिया में ये दुनिया है इसी काबिल।'

**सफलता सरोज** : आप ने किन-किन विधाओं में लिखा है?

**राही जी :** बस यह मत पूछिए। मैंने गजलें भी कही हैं और गीत भी लिखे हैं। एक गजल तो बेहद मकबूल हो गई

है और कवि-सम्मेलन में सुनाई जाती है-

'हम पर दुख का परबत टूटा तब हम ने दो-चार कहे
उस पे भला क्या बीती होगी जिसने शेर हजार कहे।'

लंबी कविताएं लिखीं, जिनमें से एक तो बहुत ही लोकप्रिय हुई। उसकी कुछ पंक्तियां हैं -

'जब किसी बाग पर पड़ती है बिजलियों की नजर
जब किसी फूल के रूख पर मलाल आता है,
जी ये होता है कि दुनिया से बगावत कर दूं
पर तेरे हाथ की चूड़ी का खयाल आता है।
भूख के धन उगें, दर्द की सरसों फूले,
क्या इसी वास्ते आंसू से धरा सींची थी?
ऐ मेरी कौम के हमदर्द बता दो इतना
क्या नए देश की तस्वीर यही खींची थी?'

मुख्य रूप से तो मैं गीतकार रहा हूं। गाकर नहीं पढ़ता, फिर भी लोगों का अपार प्यार मुझे मिलता है। मेरे कई गीत लोग गुनगुनाते हैं। दो गीत खास तौर पर मशहूर हुए -

'कटीले शूल भी दुलरा रहे हैं पांव को मेरे,
कहीं तुम पंथ पर पलकें बिछाए तो नहीं बैठीं!'

'पी जा हर अपमान और कुछ चारा भी तो नहीं!
माथे से हर शिकन पौंछ दे, आंखों से हर आंसू,
पूरी बाजी देख अभी तू हारा भी तो नहीं!'

मैंने अनेक मुक्तक कहे हैं जो लोगों की जबान पर चढ़ गए हैं। जैसे-

'हसरतों की ज़हर बुझी लौ में,
मोम-सा दिल गला दिया मैंने।
कौन बिजली की धमकियां सहता
आशियां खुद जला दिया मैंने!

मुक्त छंद में मेरी गहरी रुचि है और मुक्त, छंद में लिखी एक कविता ने मुझे कवि सम्मेलनों में बहुत लोकप्रियता दिलवाई। उस का शीर्षक है- 'अजंता की कलाकृतियों के नाम।' कुछ पंक्तियां देखिए -

'नग्न हो सकता स्वयं सम्राट
पर जनता कभी नंगी नहीं होती,
इसी से नग्न हो तुम क्योंकि तुम जनता नहीं हो
हो 'अजंता!' देखने से लाज लगती है तुम्हारी ओर!'

मैंने दूरदर्शन के लिए अनेक रूपक लिख हैं। भारत सरकार के सांग एंड ड्रामा डिवीजन के लिए अनेक मंचीय नाटक लिखे हैं जिन में नारी-केंद्रित रूपक 'शतरूपा' बहुत ही चर्चित हुआ। और सब से महत्वपूर्ण बात तो यह कि मैंने हिंदी का पहला ऑपेरा 'राग-विराग' लिखा है।

**सफलता सरोज :** इधर क्या लिख रहें हैं और उसके केंद्रीय विचार क्या हैं?

**राही जी :** आजकल मैं मुख्य रूप से गीत और गजलें लिख रहा हूं। इधर लिखे गीतों में दो गीत विशेष रूप से लोकप्रिय हुए हैं -

'महानगर की भीड़-भाड़ से, बंद फाइलों के पहाड़ से
बच कर कहां भाग जाऊं मैं, मेरा कोई गांव नहीं!'

'यों तो बहुत संसार ने रौंदा मुझे, तोड़ा मुझे,
फिर भी कहीं कुछ लोग हैं, जो चाहते थोड़ा मुझे।'

इन दिनों जो गजलें कही हैं, उनमें से कुछ शेर लोगों की जबान पर चढ़ गए हैं। मिसाल के तौर पर-

'एक धागे का साथ देने को
मोम का रोम-रोम जलता है!'

'लोग टिकने नहीं देते हैं कभी चोटी पर,
जान-पहचान ढलानों से बनाए रखना!'

'पहचान अगर बन न सकी तेरी तो क्या गम,
कितने ही सितारों का कोई नाम नहीं है।'

हाल ही में मेरी गजलों का एक संकलन आया है 'चलो फिर कभी सही।' यह संकलन बहुत पसंद किया जा रहा है। मेरे चुने हुए गीतों का एक संकलन 'सदाबहार गीतकार : बालस्वरूप राही' नाम से आया है, जिसमें मेरे चुने हुए गीत हैं। मैं जो आजकल लिख रहा हूं, वह ज्यादातर 'आज' पर केंद्रित है। आज का समाज बाजारवाद में खो गया है। निकटतम व्यक्ति भी पराया हो गया है।

दुनियादारी के सिवा कुछ बचा नहीं। प्यार-मोहब्बत तो अतीत की गोद में समा गए। नैतिकता के लिए कहीं कोई जगह नहीं, राजनीति के सिवा किसी को कुछ सूझता नहीं। साहित्य दृश्य-श्रव्य माध्यम पर आश्रित हो गया है। किताबों की जगह कंप्युटर ने ले ली है। ऐसे में कोई साहित्य रचे तो क्या रचे। फिर भी जिन की रग-रग में साहित्य रचा-बसा है, वे साहित्य के प्रति उदासीन कैसे हो सकते हैं। मैं एक बाल साहित्यकार भी हूं। बच्चों के लिए बड़े शौक से लिखता हूं। मुझे साहित्य अकादमी का बाल साहित्यकार का पुरस्कार भी मिल चुका है। ऐसे में मैं तो किताब ताक पर नहीं रख सकता। मेरी तो यही कामना है कि साहित्य पाठकों तक पहुंचे, चाहे उस का माध्यम फेसबुक ही हो।

**सफलता सरोज :** तो क्या साहित्य में सोशल मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को आप बुरे रूप में नहीं लेते हैं?

**राही जी :** नहीं, सोशल मीडिया और इलेक्ट्रानिक मीडिया तो आजकल मनुष्य के पूरे जीवन पर छा गए हैं। साहित्य इनसे कैसे बच सकता है? मैंने कई वर्ष पहले ही लिख दिया था-

'आंकड़े उनके पढ़ेंगे बैठकर,
लोग कंप्यूटर में डाले जाएंगे।'

नई पीढ़ी तो कंप्यूटर आदि से इतना जुड़ गई है कि इन के बगैर उस का गुजारा ही नहीं। साहित्य भी कलम-दवात, पुस्तक आदि से विच्छिन्न होकर फेसबुक से जुड़ गया है। इससे यह तो हुआ है कि वह वहां तक पहुंचा है जहां उसकी पूछ ही नहीं थी। परंतु स्तर बनाए रखने की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है।

**सफलता सरोज :** सोशल मीडिया लेखकों की जो नई पौध तैयार कर रहा है, आप इससे कितना सहमत हैं?

**राही जी :** जब फेसबुक पर हजारों लोग कविता सुनेंगे, तो सुन-सुन कर सैकड़ों लोग लिखेंगे भी। इसमें कोई संदेह नहीं कि फेसबुक के माध्यम से सैकड़ों चेहरे उभरकर सामने आ रहे हैं और आगे भी आयेंगें।

**सफलता सरोज :** आप साहित्य की परिवर्तनकारी शक्ति में काफीं हद तक विश्वास रखते हैं?

**राही जी :** हां। यहां सब कुछ परिवर्तनशील है। आज जो है वह कल नहीं रहेगा। लेकिन काफी हद तक साहित्य की परिवर्तनकारी शक्ति को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के व्यापक प्रचार-प्रसार ने खतरे में डाल दिया है। अब तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया मंत्रा से ज्यादा, तंत्रा से ज्यादा, यंत्रा पर आधरित है।

**सफलता सरोज :** साहित्य में गुटबाजी का जो दौर चल रहा है, उसके बारे में आप क्या कहेंगे?

**राही जी :** 'कौन गुटबाजी से अब बच पाएगा, किस तरह बातावरण रच पाएगा।' गुटबाजी का दौर ही नहीं चल रहा दौरा पड़ा हुआ है। कोई साहित्यकार हमजोली के सिवा और किसी की झोली में झांकता तक नहीं। और बांहें भी सिर्फ उसके गले में जाती हैं, जिससे कोई उम्मीद हो। मेरा एक शेर है-

'दोस्त क्योंकर खफा है मन ही मन,
मैंने कब की किसी से मनमानी।'

गुटबाजी के सिवा बचा ही क्या है? एकांत साधना के दिन गए। अब तो परिस्थितियों को साधना पड़ता है।

**सफलता सरोज :** आप को मैं मंचों पर कम ही देखती हूं। ऐसा क्यों?

**राही जी :** मैं शुरू से मंचों पर बहुत अधिक नहीं गया। एक तो मैं यात्रा-भीरु हूं, दूसरा भीड़-भड़क्के से कतराता हूं। यों तो अनेकानेक कवि-सम्मेलनों में मैंने भाग लिया है और दाद पाई है। पर मुझे कवि-गोष्ठियों में ज्यादा आराम मिलता है। यह सही है कि अनेक कवि कवि सम्मेलनों में वाह-वाही लूट रहे हैं और पैसा भी बटोर रहे हैं। लोकप्रियता उनके कदम चूम रही है। यह उनके स्वभाव और उनकी रीति-नीति की जीत है। मेरी दिनचर्या थोड़ी भिन्न है।

**सफलता सरोज :** एक प्रतिष्ठित रचनाकार को लेखन

के स्तर पर किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है?

**राही जी :** मैंने जब लेखन की शुरूआत की, तब सब से बड़ी समस्या तो प्रकाशन की थी। मैंने जब लेखन प्रारंभ किया तो मेरे सामने सबसे पहली समस्या तो यही थी कि अपनी कविता छपवाऊं कैसे और कहां? उन दिनों जो पत्र-पत्रिकाएं हिंदी-जगत पर छाई हुई थीं उनमें धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, नवनीत, कादंबिनी, सरिता जैसी पत्रिकाएं लोकप्रियता के चरम शिखर पर थीं। जाहिर है कि इतनी बड़ी पत्रिकाएं प्राय: बड़े लेखकों की रचनाएं ही छापती थीं। मैं जब अपनी कविता सरिता को भेज देता था तो प्राय: वह इस टिप्पणी के साथ लौट आती थी- 'संपादक के अभिवादन व खेद सहित।' मैं व्याकुल हो जाता कि रचना छापो न, खेद प्रकट करने से क्या होता है। लंबे संघर्ष के बाद मेरी रचनाएं 'सरिता' में छपनी शुरू हुईं। बाद में तो मैं 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के संपादकीय विभाग में स्वयं चला गया और रचना प्रकाशन का संकट दूर हो गया। उसके बाद समस्या आई काव्य-संकलन के प्रकाशन की। इसके बाद यह चुनौती सामने आई कि आलोचकों की शाबाशी कैसे मिले! अधिकतर समीक्षक-समालोचक नई कविता और जनवादी कविता के समीक्षक थे। हम जैसे गुटनिरपेक्ष कवियों की पीठ थपथपाने वाले आलोचक बहुत कम थे। मैं क्योंकि दृश्य-श्रव्य माध्यम से जुड़ गया था इसलिए मुझे कुछ आसानी हो गई।

**सफलता सरोज :** देशकाल और परिस्थितियों ने आप को कितना प्रभावित किया?

**राही जी :** देश काल और परिस्थितियों ने मुझे बहुत ही गहरे में प्रभावित किया है। परिस्थितियों ने मुझे इतना आहत किया कि मुझे कहना पड़ा-

'जब से आजादी की जिद दिल में है ठानी हम ने,
खाक सड़कों की बड़े शौक से छानी हमने।'

याद आते हैं वो दिन चैक के बदले में जब
शेर होते थे मेरे पास भुनाने के लिए।'

परिस्थितियों ने मेरा साथ बहुत कम दिया है। जितनी खुशियां दी हैं, उससे ज्यादा गम दिया है। मौकापरस्ती प्रतिभा को हरा देती है।

**सफलता सरोज :** मेरा रूप तुम्हारा दर्पण, जो नितांत मेरी हैं, राग विराग, राही को समझाए कौन, संपूर्ण बाल कविताएं आदि संकलनों के बाद की अब तक गीत यात्रा के प्रमुख मोड़ क्या हैं?

**राही जी :** हाल ही में मेरा गजल संकलन 'चलो फिर कभी सही' छपा है। मुझे प्रसन्नता है कि उसे अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। एक काव्य-संकलन 'कुछ तब की कुछ अब की' प्रकाशनोन्मुख हैं। इसमें अधिकतर मेरी वे कविताएं संकलित हैं जो अन्य संकलनों में शामिल नहीं है। हाल ही में मेरे लगभग सभी गीतों का एक संकलन छपा है-'सदाबहार गीतकार बालस्वरूप राही'। इस में मेरे लगभग सभी प्रमुख गीत आ गए हैं। आजकल ज्यादातर गजलें कह रहा हूं। उनका

**सफलता सरोज :** आप गीत के भविष्य को किस रूप में देखते हैं?

**राही जी :** नवगीत के माध्यम से गीतों में और भी आधुनिकता लाने का प्रयास किया जा रहा है। वैसे भी गीतों की पठनीयता में कोई कमी नहीं आई है।

**सफलता सरोज :** आज की कविता में क्या अर्थबोध की जगह पुन: रसबोध की वापसी संभव मालूम पड़ती है?

**राही जी :** मैंने कहा न कि फेसबुक के माध्यम से कविता फिर अवाम तक पहुंच रही है। मुझे बताया जाता है कि हजारों श्रोता कविता के प्रोग्राम सुनते हैं। इस दिशा में गुलशन खरबंदा, अलका सिन्हा, लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, कीर्ति काले, सुरेश नीरव जैसे अनेक कवि-कवयित्रियां सक्रिय हैं।

रसबोध ही कविता का चरम लक्ष्य है, अर्थबोध तो केवल माध्यम है। कंप्यूटर पर श्रोताओं की संख्या

अपार हो जाने से लगता है कि रसात्मकता को फिर पूरा महत्व मिलेगा।

**सफलता सरोज :** कविता में बिंब, प्रतीक और मिथकों का उपयोग किस तरह हो?

**राही जी :** ये प्रयोग कवि की काव्य-शैली पर निर्भर करते हैं। इनका प्रयोग सिद्धि के रूप में नहीं, साधन के रूप में होना उचित है।

**सफलता सरोज :** उर्दू और हिंदी की गजलों में कौन-सा मूलभूत फर्क आप मानते हैं?

**राही जी :** गजल तो गजल होती है। पहले गजल का मूल विषय होता था आशिक माशूक की बातचीत, अब उसकी परिधि बड़ी विशाल हो गई है। यह परिवर्तन उर्दू और हिंदी दोनों ही भाषाओं में हुआ है। अब दोनों भाषाओं की गजलों में फर्क की जगह समानता अधिक है।

**सफलता सरोज :** लेखन-यात्रा का कोई यादगार लम्हा?

**राही जी :** लम्हात तो तरह-तरह के हैं पर बचपन की वह घटना भूलती नहीं। मै ने लिखना शुरू ही किया था। मेरे पिताजी घूमने-घामने के ज्यादा शौकीन नहीं थे। बहरहाल, वे अपने कुछ साथियों के साथ घूमने गए हुए थे। उनकी अनुपस्थिति में एक पत्रिका में मेरी एक कविता छप कर आई -

'श्याम रंग में रंगी चुनरिया
कौन दूसरा रंग खिलेगा?
सजी न मैं बारात न आई,
बजी न मेरे घर शहनाई,
फिरे न फेरे चढ़ी न डोली
फिर भी मैं हो गई पराई।
ब्याह-जोग मेरी न उमरिया,
कैसे उनसे जोड़ मिलेगा?

मेरे पिता कृष्णभक्त थे। यह कविता पढ़कर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने मुझे सौ रुपए का मनीआर्डर भिजवा दिया। अब अगर किसी कविता पर हजारों भी मिल जाएं, मैं सौ रूपए के उस आशीर्वाद को भूल नहीं सकता।

**सफलता सरोज :** क्या आप देश की वर्तमान स्थिति से संतुष्ट हैं?

**राही जी :** वैसे तो ठीक-सी है, परंतु साहित्य को जो सम्मान मिलना चाहिए, मिल नहीं पाता। मिल भी जाता है तो उसमें राजनीतिक पक्षपात और गुटबंदी जुड़ जाती है।

**सफलता सरोज :** आज दिखावे का जमाना है-जो जितना दिखता है उतना ही बिकता है। लेकिन आप इन बातों से कोसों दूर रहे तो क्यों?

**राही जी :** क्योंकि मैं लिखता तो हूं, बिकता नहीं।

सफलता सरोज : कोई संदेश और युवाओं के लिए?

**राही जी :** धुएं और धुंध भरे इस युग में आओ, हम अर्थ की तलाश करें चाहे वह व्यर्थ हो।

- **बालस्वरूप राही,** पता
- **सफलता सरोज,** चौबेपुर कानपुर नगर यू.पी. 209203
मोबाइल : 9793976367

**'वीणा' की सदस्यता हेतु देय शुल्क के भुगतान हेतु निम्न कोड का इस्तेमाल कर 'वीणा' के बैंक खाते में राशि हस्तांतरित की जा सकती है-**

व्यंग्य

# मैं कुछ सोच रहा हूं...

सुरेश मिश्र 'विचित्र'

सोचना बहुत बड़ी बात है। मुझे तो सोचने के संबंध में ज्ञान ही नहीं था। सोचने के बारे मुझे ज्ञान तब प्राप्त हुआ, जब एक दिन पत्नी ने कहा कभी-कभी खुद के बारे में भी सोचा करो। मैंने कहा क्या सोचूं... ? उन्होंने कहा सोचोगे तो पता चलेगा कि क्या सोचना है। दुनिया पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती है। कहां से कहां पहुंच गई है। और एक आप हो कि वहीं के वहीं हो, कुछ सोचते ही नहीं हो... ? तब से मैं निरंतर गंभीर सोच में पड़ा हूं...और मैं कुछ सोच रहा हूं, लेकिन यह पता नहीं है कि सोच क्या रहा हूं।

सोचता हूं...किसानों के बारे में सोचूं, जो रात-दिन खेतों में मेहनत करते हैं और फसल तैयार करते हैं। अच्छी फसल होने के बाद भी कभी ठंड पड़ जाती है। कभी पाला पड़ जाता है। कभी पानी गिर जाता है। कभी ओले गिर जाते हैं। कभी अधिक गर्मी पड़ जाती है। कभी आग लग जाती है। या व्यापारियों के बारे में सोचूं... जो अपनी फैक्ट्रियों में सामान तैयार करके लोगों को बैंक के माध्यम से उधारी में दे रहे हैं और ब्याज भी ले रहे हैं। कीमत भी ले रहे हैं। मुनाफा भी ले रहे हैं। या नेताओं के बारे में सोचूं...जो मोहल्ले में भी हैं, शहर में भी है,, देश में भी है... जो, दिन भर कुछ-ना-कुछ बोलते रहते हैं। कुछ-न-कुछ सोचते रहते हैं और हमेशा लोगों को आश्वासन देते रहते हैं। और लोग तालियां बजाते रहते हैं। यह सोचता हूं...देश के बारे में सोचूं... राष्ट्र के बारे में सोचूं...फिर सोचता हूं...क्यों सोचूं देश और दुनिया के बारे में, बहुत बड़े-बड़े लोग सोच रहे हैं। और सोचते-सोचते लड़ भी जाते हैं। और युद्ध कर लेते हैं। एक दूसरे पर बम, मिसाइल, छोड़ देते हैं। मिसाइल शहरों में भी दाग देते हैं। जिसका परिणाम आम जनता को भुगतना पड़ता है। भूखमरी, गरीबी और बहुत-सी समस्याएं हैं...क्या सोचूं? किसके बारे में सोचूं? मैं यही कुछ सोचता रहता हूं।

हमारे एक मित्र हैं वह अक्सर सोचते ही रहते हैं। जब भी मिलते हैं, कहते है कुछ सोच रहा हूं। जब उनसे पूछा जाता है, क्या सोच रहे हो ? तो वह कहते हैं, देश के बारे में सोच रहा हूं। क्या सोच रहा हूं ..यह बात वह बताते नहीं है। और उनकी जो मुद्रा है, वह हमेशा सोचती हुई ही नजर आती है। वह हमेशा कुछ-न-कुछ सोचते ही नजर आते हैं। एक सरकार गिर गई और दूसरी, एक सरकार बन गई। मित्र से मैंने कहा क्या हो गया ? वह बोले मैं सोच रहा हूं। सरकार कैसे गिर गई, और यह भी सोच रहा हूं कि सरकार कैसे बन गई ? यह दोनों घटनाओं के बारे, मैं सोचने की कोशिश कर रहा हूं। समझने की कोशिश भी कर रहा हूं। मैंने कहा थोड़ा-सा जल्दी सोच लिया करो, कहीं ऐसा ना हो कि आप सोच ही ना पाये, और तीसरी सरकार भी गिर जाते और बन भी जाये।

हर किसी की अलग सोच होती है। युवाओं की अलग सोच होती है। बच्चों की अलग सोच होती है। बुजुर्गों

की अलग सोच होती है। व्यापारियों की अलग सोच होती है। जो जिस उम्र में है, या आज जिस विधा में है, उसकी अपनी उस हिसाब से सोच होती है। और सोचते रहना बहुत अच्छी और बड़ी बात है।

सब्जी दुकान पर सब्जी खरीदते हुए मित्र बोले सोचो क्या जमाना आ गया है, एक समय था पचास पैसा किलो टमाटर मिलता था और आज देखो पचास रुपए किलो मिल रहा है। कितना जमाना बदल गया है। सोचने की बात है। जब हम छोटे थे तो सोना सत्तर, अस्सी रुपया का एक तोला मिलता था और आजकल साठ हजार रूपया का एक तोला मिल रहा है। सोचता हूं यदि उस समय मैं चाहता तो, ना जाने कितना सोना खरीद लेता लेकिन उस समय मेरे पास पैसे नहीं हुआ करते थे।

पिता जी कभी कभार पांच, दस पैसा दे दिया करते थे और हम मीठी गोली या चाकलेट खरीदकर खा जाते थे। कभी-कभी मित्रों को भी खिला देते थे। तब हम बहुत कम सोचते थे। या यूं कहें सोचते ही नहीं थे। तब हमारे बारे में सोचने की जवाबदारी हमारे माता-पिता की हुआ करती थी। और हमारी सोच उनकी सोच को किसी तरह बदल देने की हुआ करती थी। हम जिद के माध्यम से अपनी सोच उन पर थोपा करते थे। वह कहते थे समय पर खाना खाओ और हम खाते नहीं थे। वह कहते थे समय पर नहाओ और हम नहाते नहीं थे। वह कहते थे समय पर पढ़ो और हम पढ़ते नहीं थे। हमें लगता था...हम जो काम कर रहे हैं, वह सब सही है। सोच सोच में भी फर्क होता है। फिलहाल तो मैं यही कुछ सोच रहा हूं।

*- म.न. 07, आकाश बिहार, आई.टी.आई. के पीछे*
*विजयनगर, जबलपुर 482002 (म.प्र.)*
*मो. 8839120434*

---

**कविता**

## कविता का होना

**दुर्गाप्रसाद झाला**

जीवन के छंद में
जब आत्मा की
लय होती है
एक कविता
जन्म लेती है।

जब घर में
चिड़िया घोंसला
बनाती है
घर कविता
बन जाता है।

जब एक गरीब की
झोपड़ी में
कोई बालक
किलकारी मारता है
झोपड़ी में कविता
गुनगुनाने लगती है

जब चूल्हे में
रोटियां सिंकने लगती हैं
रोटियों में कविता
महकहने लगती है

जब आदमी
बाजार में बिकने से
मना कर देता है
वह कविता हो जाता है

आदमी का
कविता होना ही
आदमी का
आदमी होना है।

*- 19, स्टेशन रोड़, शाजापुर 465001*
*म.प्र., मोबा. 9407381651*

कहानी

# संघर्ष ही जीवन है

सुषमा मुनींद्र

अन्य विद्यालयों की तरह इस मिशनरी विद्यालय में भी पढ़ाई का स्तर जो है सो है। आडंबर बहुत है। विद्यार्थी विलंब से विद्यालय आएं, प्रेयर ठीक से न करें, हिंदी में बात करें, यूनीफार्म साफ-सुथरी और जूते बिलकुल काले न हों तो फाइन देना होता है या बतौर सजा प्लेग्राउंड के चक्कर लगाने होते हैं।

शारदा प्रसाद की पहचान तब इतनी भर थी कि कुछ विद्यार्थियों के साथ वह हाथ ऊपर कर दौड़ते हुए प्लेग्राउंड के 5-10 चक्कर सजा के तौर पर लगाता था। वह किन्हीं कारणों से अक्सर दंडित होता था और फाइन भरने की अपेक्षा दौड़ना उसके लिए ज्यादा अनुकूल था। उसकी नामजद पहचान शायद तब बनी जब वह 10वीं के बाद कॉमर्स विषय लेकर 11वीं में पहुंचा। छात्र-छात्राओं को तब पहली बार पता चला शारदा प्रसाद नामक छात्र इस कक्षा में पढ़ रहा है। विद्यार्थियों को आश्चर्य हुआ वह कितनी खामोशी से पढ़ता रहा कि इसकी उपस्थिति का आभास तक न हुआ। पूरी कक्षा उन विद्यार्थियों को ही पहचानती है जो पढ़ाई में अव्वल होते हैं या उद्दंडता में। उनके सकारात्मक/नकारात्मक करतब बरबस ध्यान खींचते हैं। शारदा प्रसाद न कभी अव्वल आया, न कभी अदावत की। कुल मिला कर वह सब से पीछे की बेंच पर गुम ही रहता, यदि उस की बेंच न टूटती। वजह, बेंच का पुरानापन हो या विद्यार्थी की उद्दंडता, उस बेंच के विद्यार्थियों को फाइन देना पड़ता था। विद्यालय में विकास के नाम पर शुल्क वृद्धि जारी है किंतु यह कभी नहीं देखा जाता कि विकास और सुधार की जरूरत कहां पर है।

छुट्टी के बाद क्लास खाली हो जाने पर शारदा, काशी और निखिल ने उस टूटी हुई बेंच को बड़ी सावधानी और सलीके से बाईं ओर की सबसे अगली पंक्ति में, जहां बड़े घरों की लड़कियां बैठती थीं, रख दिया और उनकी बेंच को अपनी जगह ले आये। दूसरे दिन कक्षा अध्यापिका रश्मि मैडम हाजिरी ले रही थीं, ठीक उसी समय बड़े जतन और सलीके के साथ जमा कर रखा गया बेंच का टूटा पाया सरक गया। नतीजन, बेंच पर बिराजी तीनों छात्राएं भरभरा कर एक-दूसरे पर गिर पड़ीं। सब से नीचे आयुषी, उस के ऊपर निमिषा और उस के ऊपर कामना। छात्र ठठाकर हंस पड़े।

ये तीनों फैशन-परस्त लड़कियां अपनी ऐंठ में खुद को सर्वश्रेष्ठ और दूसरों को तुच्छ समझती थीं। जिस इंद्रधनुषीय लोक की बातें करती थीं वह सब साधारण छात्र-छात्राएं नहीं समझ पाते थे। छात्र इनके बड़बोलेपन और बनावटी मुद्राओं को लेकर आपस में मजाक करते थे कि इनका तालमेल किसी के साथ कैसे बैठेगा। रश्मि मैडम ने विद्यार्थियों को हंसने से रोका। अन्य छात्राओं की मदद से तीनों छात्राएं कराहते हुए उठीं। वे अपमान और असहजता से रुआंसी थीं।

रश्मि मैडम ने कुशलक्षेम पूछी, 'तुम लोग ठीक तो हो? चोंट तो नहीं आई? बेंच तो ठीक थी। कैसे बैठती हो, फाइन देना होगा।'

फिर जब ब्रेक के बाद ये तीनों लड़कियां कक्षा में दाखिल हुईं, कुछ लड़के तब भी हंस रहे थे। प्रसन्न धीरे से बोला, 'वेलडन, शारदा, मैंने तुम्हें बेंच बदलते हुए देख लिया था। ये तीनों खासकर आयुषी बहुत बढ़ी-चढ़ी रहती है। मजा आ गया।'

प्रसन्न की बात सुनकर शारदा एकदम चौंक गया कि गुप्त रूप से किया गया काम लीक कैसे हो गया? पर लड़के उसकी तारीफ कर रहे थे अत: वह ऐसे उन्माद से भर गया मानो शौर्य का काम किया हो।

आयुषी मुंह बिचका कर शारदा प्रसाद की ओर मुखातिब होकर इतराती हुई बोली, 'तो यह करामात इसकी है? मुझे परेशान करने का नतीजा अच्छा नहीं होगा?' और आयुषी पलट कर वापस चली गई। पीछे-पीछे निमिषा और कामना भी।

तीनों जल्दी ही लौंटी। क्लास में घुसते ही आयुषी बोली, 'शारदा प्रसाद जी, तुम्हें रश्मि मैडम ने याद किया है।'

'मगर क्यों?' संभवत: यह पहला वाक्य था जो शारदा प्रसाद ने क्लास की किसी लड़की से बोला। वह अब तक इतना तटस्थ रहता आया था कि उसकी तटस्थता पर आश्चर्य किया जा सकता है।

'पीठ पूजा के लिए।' आयुषी ही बोली।

'नहीं रे बाबा...!' उस ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर जिस ठेठ मुद्रा में कहा उससे छात्रों को हंसने का एक मौका और मिल गया।

आयुषी ने देखा, कुछ सुस्त, अस्त-व्यस्त सा लंबा लड़का, लमछड़ चेहरा, सुर्ख आंखें, ढीली-ढाली यूनीफार्म, बड़े-बड़े धमाकेदार कदम रखते हुए हठीली-सी चाल में उजबक जान पड़ता है, मगर दिमाग कितना शातिर है। शारदा की यह नामजद पहचान थी जो अंतिम बेंच से प्रथम बेंच तक फैल गई।

दूसरे दिन हिंदी के टीचर ने शारदा को पुकारा, 'शारदा, ये बेंच का क्या मामला है?'

'जी, सर फर्स्ट बेंच की लड़कियों से पूछिए।' शारदा प्रसाद अपनी सीट से उठ खड़ा हुआ।

'क्या मामला है, लड़कियों?'

टीचर ने अनुराग से तीनों लड़कियों को निहारा।

'सब इस लड़के की बदमाशी है और फाइन हमें देना होगा। वैसे तो ये सारे लड़के इसे बड़ी शाबाशी दे रहे थे और जब मैडम ने पूछा तब कहते हैं हमने कुछ नहीं देखा।' आयुषी रोष से बोली।

'लड़कियों को परेशान न किया करो, शारदा।'

शारदा की फिर पहचान तब बनी जब फादर ने शनिवार को रंगीन पोशाक पहनने पर प्रतिबंध लगा दिया और शारदा ने प्रस्ताव का स्वागत किया।

इस विद्यालय में भी बॉयफ्रेंड, वेलेंटाइन डे, आधुनिकतम परिधान, आयातित संस्कृति तेजी से फैल रही है। छात्राओं के डीप नेक, छोटे स्कर्ट, स्लीवलेस टाप फेस बन रहे थे। छेड़छाड़ के एक-दो केस प्राचार्य के पास दर्ज हुए। प्रेयर के बाद फादर ने सूचना जारी की- खेद के साथ कहना पड़ता है कुछ छात्राएं फैशन के नाम पर भड़कीली पोशाक पहनतीं हैं जबकि हमारी संस्कृति यह नहीं है। दूसरे, हम सह अस्तित्व पर आस्था रखते हैं और विद्यालय के जो गरीब विद्यार्थी हैं उनमें अच्छी पोशाक न खरीद पाने से हीनता आती है। अत: रंगीन पोशाक प्रतिबंधित की जा रही है। सोमवार से शुक्रवार तक ब्राउन यूनीफार्म व शनिवार को सफेद यूनीफार्म पहन कर आना है।

फादर का फरमान सुनकर छात्राएं उदास हो गईं। परिधान से ही तो प्रदर्शित होता है कौन कितना आधुनिक और संपन्न है। कुछ छात्राएं तो सतर्क रहती थीं कि उनकी ड्रेस रिपीट न हो। लड़कियां बुरा-सा मुंह बनाये कक्षा में दाखिल हुईं। छात्र विमर्श में लीन थे।

'लड़कियां तो घाटे में आ गई। नई-नई वैराइटी में इनका कंपीटीशन पूरा होता था और हम भी आंखें सेंक लेते थे।' अस्पष्ट सामूहिक स्वरों के बीच उभर कर आई यह स्पष्ट आवाज पता नहीं किस छात्र की थी।

'राइट, राइट!' शारदा प्रसाद ने पता नहीं किस धुन में ताली ठोंक कर टेक लगा दी।

आयुषी ने अचानक शारदा को देखा जो कि संयोगवश उसे ही ताक रहा था। वह तन गई। यह बेवकूफ लड़का या तो उसका प्रतिद्वंदी बनना चाह रहा है या आशिक। शारदा प्रसाद को ताक कर निमिषा से बोली, 'लड़कियां घाटे में ही सही पर उन इडियट लड़कों का भला हो गया जो शनिवार को भी सफेद शर्ट पहनते हैं।'

यह सुनते ही शारदा की नजर अपनी सफेद शर्ट पर जा टिकी। वह विपन्नता में कभी भी बन संवर कर स्कूल नहीं आता था। शनिवार को भी गणवेश की सफेद शर्ट और कोई भी धूसर रंग की पैंट पहनता था। इसके बावजूद वह अपने आत्मसम्मान को कम नहीं होने देता था और आयुषी उसकी गरीबी की ओर इशारा कर उसे चुनौती दे रही थी। वह तमक कर बोला, 'लड़के सजधज कर, लटके-झटके दिखा कर समय बरबाद नहीं करते। लड़कियां ही लड़कों को रिझाती घूमें।'

'हद कर दी इस मूर्ख ने!' कामना ने उत्तर दिया, 'इस क्लास में रिझाने लायक कोई हो भी तो। मैथ और बायो के लड़के फिर भी स्मार्ट हैं, कामर्स में तो सब बोगस...।'

'रांग, रांग।' शारदा ने फिर ताली ठोंक दी। लड़कों को हंसने का एक मौका और मिला।

फिर शारदा की पहचान तब बनी जब उसने वार्षिकोत्सव में एक गीत गाया, 'पथरा पानी के विपतिया अब न बिसरी....' बहुत कुछ भाव छिपा था उन ठेठ आंचलिक शब्दों में, सुर में, लय में, उसके चेहरे की उदासी में, स्वर के आरोह5अवरोह में, सुर्ख आंखों की धीरता में, पीछे हाथ कर के विश्राम की मुद्रा में खड़े होने में। वह गीत जैसे उसी वर्ष आई बाढ़ का शब्दचित्र था जिसकी मार्मिकता में डूबने उतराने लगे थे विद्यार्थी, श्रोता और अतिथिगण। संचालन कर रही सिस्टर थामस ने घोषणा की 'ऑनरेबल चीफ गेस्ट ने शारदा प्रसाद को इस गीत के लिये 501 रुपये की प्रोत्साहन राशि प्रदान की है।'

शारदा पहली बार आयुषी सहित पूरी क्लास को अच्छा लगा। कुछ न होते हुए भी कुछ विशिष्ट है इसमें। तभी तो इसकी ओर ध्यान चला जाता है। इसके निम्न औसत व्यक्तिगत की खासियत क्या है?

शायद यह गाता अच्छा है। शायद यह किसी से कुछ अपेक्षा न रख अपने में गुम रहता है। शायद यह कि किसके पास क्या है, इसे जानना नहीं, इसके पास क्या नहीं है इसे बताना नहीं। और इसमें कुछ भी खास नहीं है शायद यही इसकी खासियत है।

परीक्षाएं हो गईं। विद्यार्थी 12वीं में आ गये और फिर शारदा प्रसाद की पहचान तब बनी जब वह पेरेंट-टीचर मीटिंग में इसी विद्यालय में 10वीं में पढ़ रहे अपने भाई का अभिभावक बन कर गया।

पेरेंट मीटिंग कोई सुधारवादी कदम नहीं बल्कि खानापूर्ति मात्र थी। अभिभावकों से समस्याएं, शिकायतें पूछी जातीं। यदि अभिभावक बता दें तो संबंधित विद्यार्थी को उत्पीड़ित किया जाता कि वह घर में शिक्षकों की निंदा करता है। अभिभावक यदि मीटिंग में न आये तब भी विद्यार्थी को दंडित किया जाता है कि अभिभावक का आना जरूरी है। विद्यार्थी अभिभावकों को समझा देते थे वे मीटिंग में जाएं पर शिकायत दर्ज न कराएं।

रश्मि मैडम हाजिरी के बाद से पूछने लगीं, 'शारदा प्रसाद, कल तुम अपने भाई के गार्जियन बन कर मीटिंग में पहुंच गये। टीचर को बेवकूफ समझते हो?'

'जी, मैडम! भाई बोला जिसके पेरेंट्स नहीं आयेंगे उसे पनिश किया जायेगा। पिताजी हैं नहीं, अनपढ़ मां गांव में रहती हैं, तो मैं ही..... बड़ा भाई होने के नाते मैं

उसका गार्जियन ही हूं।'

'ओह, तुम्हारी परिस्थित यह है। तब तो तुम्हें पढ़ाई में बहुत ध्यान देना चाहिये। तुम सुस्त रहते हो। तुम्हारा भाई तुम से बेहतर है। अच्छा पढ़ता है, अच्छा एथलीट भी है।'

'यस.....नो मैम!' शारदा प्रसाद हड़बड़ा गया।

'सिट डाउन।'

फिर वह तब पहचाना गया जब उसने शिक्षक दिवस पर चंदा देने से मना कर दिया। ज्ञान की आधुनिक मंडियों में शिक्षक दिवस प्रेरणा नहीं फैशन बन गया है। विद्यार्थी शिक्षकों को उपहार देते हैं। शिक्षक, खासतौर से शिक्षिकाएं, पूछने लगती हैं, 'टीचर्स डे की क्या तैयारी की जा रही है?'

चंदे की राशि आयुषी के पास जमा की जानी थी। उसने क्लास को संबोधित किया, 'यह हमारा लास्ट इयर है। हम सभी टीचर्स को बेस्ट क्वालिटी गिफ्ट देंगे। ताकि वे हमें हमेशा याद रखें। जिन लोगों ने 250 रुपये अब तक नहीं दिये हैं, आज दे दें।'

'हैसियत नहीं है।' शारदा प्रसाद पीछे की बेंच से उचक कर बोला। इस पर विद्यार्थी हंसने लगे। आयुषी खिन्न हो गयी, 'शारदा, तुम्हें हरदम हमारा विरोध ही करना है? तुम्हारी संगत में ये काशी और निखिल भी पैसे नहीं दे रहे हैं।'

'फालतू काम के लिये हमारे पास पैसे नहीं हैं।' शारदा ने दोहरा दिया।

'यह फालतू काम है?'

'हां, शिक्षकों की चमचागीरी। बालदिवस पर ये गुरु लोग हम विद्यार्थियों को गिफ्ट क्यों नहीं देते?'

विद्यार्थी फिर हंसे। आयुषी तल्खी से बोली, 'तो नहीं मानोगे?'

'नहीं। गिफ्ट में लिख देना शारदा, काशी, निखिल को छोड़कर।'

'गो टू हेल।'

फिर उसकी पहचान तब बनी जब उसने हड़ताल का विरोध किया। दिलबाग सिंह सर, जिन्हें विद्यार्थी आपस में 'बागी' सर कहते थे, बगावत कर गये। कॉमर्स, इकोनामिक्स, अकाउंट लगभग सभी विषय वही पढ़ाते थे। तमाम निजी विद्यालयों की तरह इस संस्थान में भी पूरे वेतन पर हस्ताक्षर लेकर आधा वेतन दिया जाता था। इसीलिए यहां योग्य शिक्षकों का अभाव रहा है। मुख्यत: अध्यापिकाएं ही हैं जो अंग्रेजी जानने के कारण रख ली जाती हैं और टाइम पास के भाव से काम करती हैं।

11वीं के लिये मैथ्स, कॉमर्स के जो अध्यापक हैं वे कम वेतन से असंतुष्ट रहते हैं और अच्छा विकल्प मिलते ही विद्यार्थियों के भविष्य को आपात काल में डाल कूच कर जाते हैं। किंतु तमाम विद्यालयों की तरह यहां भी कुछ प्रतिभा संपन्न विद्यार्थी हैं जो अपनी प्रतिभा और ट्यूशन के बूते अच्छा रिजल्ट लाते हैं, जिसका श्रेय स्वाभाविक रूप से विद्यालय को जाता है और विद्यालय अपनी तमाम आलोचना, असंतोष के साथ अपनी प्रतिष्ठा, प्रगति, प्रोन्नति, प्रासंगिकता कायम किये हुए है।

बागी सर की कार्यक्षमता को देखते हुये उन्हें कुछ हजार रुपया अधिक दिया जाता था पर वे अपने महत्व और लोकप्रियता को केंद्र में रख पूरा वेतन चाहते थे। प्रबंधन ने प्रस्ताव नहीं माना। बागी सर ने त्यागपत्र दे दिया कि उन्हें अन्यत्र अच्छा काम मिल रहा है। कॉमर्स के छात्र एक बारगी खाली हो गये। स्कूल का अंतिम वर्ष। बोर्ड परीक्षा की अंकसूची भविष्य तय करेगी। विद्यार्थी कक्षा का बहिष्कार कर धरने पर बैठ गये, 'वी वांट दिलबाग सर।'

अब तक के इतिहास में यह पहली बार हुआ जब विद्यालय हड़ताल जैसे संक्रमण काल से गुजरा। शारदा, काशी, निखिल व अन्य 8-10 छात्र हड़ताल में सक्रिय न होकर कक्षा में बैठते थे। प्रणेता बने छात्र-छात्राएं शारदा के सम्मुख जा खड़े हुए, 'शारदा, तुम यूनिटी में नहीं रह सकते?' प्रसन्न तर्जनी तान कर धमका रहा था।

शारदा नोट्स लिख रहा था, 'नहीं, तुम लोग तो ट्यूशन से कोर्स पूरा कर लोगे पर हमारे लिये तो वही पढ़ाई है जो स्कूल में होती है। हिंदी, इंगलिश की क्लास ली जा रही है, दूसरे टीचर का प्रबंध किया जा रहा है। हमें पढ़ना है।'

'दूसरे टीचर से कोई नहीं पढ़ेगा, बागी सर नहीं तो कोई नहीं।' यह आयुषी थी।

'जाओ जाओ, मैं हड़ताल में नहीं बैठना चाहता, यह मेरी मरजी है।'

'तो शारदा, तुम यूनिटी भंग करोगे?' आयुषी ही बोली।

'तुम लोग मैदान से क्लास में आ जाओ, यूनिटी बनी रहेगी।'

'चैलेंज कर रहे हो? लो करो।' कहते हुये आयुषी को न जाने क्या हुआ, उसने बेंच का सिरा पकड़ा और बेंच को उठा दिया। दूसरे सिरे पर बैठा शारदा फिसल कर नीचे जा गिरा। यह सब कुछ क्षणों में घट गया। आयुषी नहीं जानती थी उसमें इतनी ताकत है कि वह बेंच को उठा पायेगी।

सभी हंसने लगे। इस समर्थन से आयुषी को बल मिला और वह भी ठठा कर हंस पड़ी।

शारदा ने हाथ तान लिया, 'एक झापड़ पड़ेगा तो दिन में चांद तारे नजर आने लगेंगे। फिर बुलाना अपने फादर को, मदर को, ब्रदर को।'

'क्या करते हो?' काशी ने शारदा का हाथ खींच लिया।

यह क्रिया भी क्षणों में हो गई। आयुषी के लिये यह लगभग असंभव स्थिति थी। अभी वह ठठा रही थी और अभी रोना फूट पड़ा।

शारदा की लाल आंखें सुलग उठीं। चेहरा तमतमा कर विकृत हो गया। जैसे मिरगी का प्रभाव हो - 'बस हो गया?' धारा बहने लगी, 'अरे, तुम लड़कियां तभी तक उछाल मारती हो जब तक कोई मुठभेड़ करने वाला न मिले। लड़की की तरह रहो, हमारे सिर पर न बैठो।'

'अब चुप भी रहो, शारदा!' खुद को जिम्मेदार समझने वाले किसी छात्र ने आपत्ति की।

'यह बेवकूफ चुप रहेगा? इंगलिश मीडियम वाले ऐसे कॉन्फीडेंट और डीसेंट होते हैं कि अलग पहचाने जाते हैं और ये स्टुपिड ...।' कामना ने आयुषी की ओर से कहा।

'चुप रहो, कामना!' किसी छात्रा ने जिम्मेदारी निभाई।

मामला आपस में ही सुलझाया गया। शिक्षक समुदाय हड़तालियों से रुष्ट था। वहां कोई सुनवाई न होती। छात्र-छात्राएं परास्त भाव से मैदान में, जहां धरना दिया जा रहा था, जा बैठे। शारदा प्रसाद की भर्त्सना की गई, 'शारदा इतना निरंकुश हो सकता है आज पता चला।'

'यह अपनी मूर्खता मे हद से गुजर सकता है, इससे बच कर रहना चाहिये।'

'इसे हरदम विरोध ही करना है।'

'वैसे तो क्लास में सोता रहता है और अब बड़ा पढ़ाकू बन रहा है।'

'पता नहीं इसे कितनी नींद आती है।'

'इसे फेयरवेल में टाइटिल मिलना चाहिए, 'कुंभकर्ण।'' किंतु उसे टाइटिल मिला था - 'चलती का नाम गाड़ी।'

विदाई समारोह के बाद परीक्षा का वातावरण बनने लगा। प्रिपरेशन लीव हो गई। परीक्षा के अंतिम दिन विद्यार्थी उत्साह में थे। सी.ए., सी.एस., बी.सी.ए. कौन क्या करेगा? आगे पढ़ाई के लिये पुणे, दिल्ली, इंदौर कौन कहां जायेगा? छुट्टियों की क्या योजना है? और अब इतने वर्षों तक साथ पढ़ने वाले बिछुड़ रहे हैं तो शाम को फन एंड फूड में गेट-टुगेदर हो जाये। और शारदा प्रसाद ने दो टूक कहा, 'मैं नहीं आऊंगा।'

'तुम न ही आओ तो बेहतर।' आयुषी ने भरपूर

उपेक्षा दिखा दी।

और जैसे शारदा प्रसाद की वास्तविक पहचान होनी अभी बाकी थी। आयुषी ग्रीष्मावकाश में सपरिवार नानी के घर जा रही थी। नौकर आटोरिक्शा ले आया। चालक की सीट पर शारदा प्रसाद बैठा था।

'तुम?' आयुषी उसे देखते ही एकदम चीख पड़ी।

'तुम?' जवाब में शारदा भी चीखा।

'तुम आटो चलाते हो?'

'हां, नाइट शिफ्ट में।'

'तुमने कभी बताया नहीं शारदा।'

'तुमने पूछा नहीं आयुषी। काशी और निखिल जानते हैं मैं ऑटो चलाता हूं। वैसे भी हम अपने आस-पास या एक-दो बेंच के स्टूडेंट्स को ही पूरी तरह जान पाते हैं। तुम अपने सर्किल को जानती हो, मैं अपने।'

'ओह!..... नाइट शिफ्ट में ऑटो चलाते हो इसलिए ठीक से सो नहीं पाते होगे। क्लास में सुस्त रहते हो।'

'घर में पढ़ने का मेरे पास वक्त नहीं होता। इसलिए मैं हड़ताल का विरोध करता था। मेरे लिये बस वही पढ़ाई है जो क्लास में होती थी। न मैं ट्यूशन ले सकता हूं न मेरे पास पूरी किताबें हैं। पिताजी थे तब ठीक था। वे रहे नहीं, मां और छोटी बहन गांव में रहते हैं। मैं पिताजी का ऑटो चलाने लगा। मैं आगे पढ़ सकूंगा या नहीं पर छोटे भाई को पढ़ाना चाहता हूं।'

आयुषी उसे देखती रह गई। शारदा प्रसाद कितने बदले हुए संदर्भ में ठीक सामने खड़ा है। धूप की तपन, जाड़े की ठिठुरन, फुहारों की सिंहरन को हम लोगों की तरह यह भी फुर्सत और इत्मीनान से महसूस करना चाहता होगा पर इसके लिये वक्त निर्मम है। अपनी अल्हड़ और खुशफहम उम्र की मौज मस्ती ठीक हम लोगों की तरह करना चाहता होगा पर परिस्थितियों ने इसे घेर रखा है। देख रही है आयुषी, शारदा प्रसाद के चेहरे के स्याह-सफेद रंग। यह अपना सच छिपाने के लिये कुछ अधिक ही सावधान रहा। कभी आक्रामक हुआ, कभी अदावत की, कभी अपने भरेसपन में ह्यूमर लाकर बात खत्म करता रहा। अपना सच छिपाता रहा है क्योंकि हर कोई परमहंस नहीं होता। हर किसी के पास निरपेक्ष दृष्टि नहीं होती। इसके सच को जान कर विद्यार्थी इसे करुणा, सहानुभूति या हीनता से देखते जबकि यह अपनी सहजता में अपने आत्म सम्मान को बचाये रखना चाहता है।

आयुषी और उसके परिवार को रेलवे स्टेशन पहुंचा कर शारदा प्रसाद ऑटो मोड़कर लौट चला। आयुषी ने देखा, ऑटो के पीछे लिखा था - संघर्ष की जीवन है।

*- सुषमा मुनींद्र, द्वारा श्री एम. के. मिश्र, जीवन विहार अपार्टमेंट, फ्लैट नं. 7, द्वितीय तल महेश्वरी स्वीट्स के पीछे रीवा रोड, सतना (म.प्र.) 485001*

*मोबाइल : 08269895950*

## आवरण चित्र के बारे में...

इस अंक के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित मोर का रेखाचित्र मधुबनी शैली से प्रेरित एक मुक्त स्कैच है जिसे श्री मिलिंद देशपांडे ने तैयार किया है।

**श्री मिलिंद देशपांडे** एक बहुआयामी व्यक्तित्व है। पंजाब नेशनल बैंक से सेवानिवृत्ति के उपरांत आजकल वे संपूर्ण रूप से समाज सेवा, जैसे बीमार लोगो के लिए नि:शुल्क चिकित्सा उपकरण उपलब्ध कराना, साहित्य सेवा, जैसे वाचन संस्कृति के प्रसार के लिए लोगो को पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करना, तथा रंगकर्म, जैसे नाटकों का मंचन करना, लघु फिल्मों में अभिनय करना आदि में व्यस्त रहते हैं। फुरसत के समय रेखाचित्र तथा पेंटिंग बनाना भी उनका शौक है।

***संपर्क:*** *401, विक्रम अपार्टमेंट, 6, नारायण बाग, इंदौर 452007 (म.प्र.) मो.9425319163*

अनुवाद

# सौदा-ए-खाम

मूल लेखक : मुंशी प्रेमचंद

अनुवाद : **जावेद आलम**

शाम का वक्त था। इलाहाबाद सेंट्रल बैंक के सामने छतनार बरगद के दरख्त के नीचे दो सिपाही बैठे हुए थे। सब्जह आगाज (किशोरवय, नौखेज) कारेसिंह जोर-जोर से भांग पीस रहा था और ये कोशिश कर रहा था कि सिल-बट्टे के साथ उठ जाए आये और सियाह फॉम रुस्तम खां आहिस्ता-आहिस्ता उफ्यून (अफीम) घोलते थे। दोनों के चेहरे शगुफ्ता (चमकते हुए) थे, दोनों मुस्करा-मुस्कुराकर एक-दूसरे की तरफ ताकते थे।

कारे सिंह ने कहा, 'आज अच्छे आदमी का मुंह देखा था।'

रुस्तम खां ने उफ्यून (अफीम) का एक घूंट पिया और मुंह बनाते हुए बोले, 'मालूम हो जाए तो मैं उस भगवान को डब्बे में बंद कर लूं और रोज दर्शन किया करूं।'

कारे सिंह ने भांग का एक बैजावी (बड़ा-सा) गोला बनाया और उसे हाथों से तौलकर, पुर इतमीनान लहजे (संतोष भरे स्वर) में बोले, 'ऐसे दो एक आदमी रोज आते रहें तो क्यों मोदी, ग्वाले और कोठी वाले की लताड़ सहनी पड़े।'

आज सेशन जज ने एक मारकतुलआरा (बहुचर्चित) मुकदमे की तजवीज (फैसला) सुनाई थी और एक मुतमव्वल (धनी) खानदान की नौजवान बेवा (विधवा) हरनाम देवी को दो साल की सजा दी थी, मालूम नहीं मुकदमे की असलियत क्या भी, जबान-ए-खल्क (अवाम - जनता) कुछ कहती थी, तजवीज-ए-मुकदमा (मुकदमे का फैसला) कुछ! लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि कुछ हुस्न-ओ-इश्क और रश्क व रकाबत (ईर्ष्या - वैमनस्य) का मामला था। दारोगा जैल और वार्डन और डॉक्टर फूले न समाते थे। आज सोने की एक चिड़िया उनके हाथ लगी थी। उसी के कदमों की बरकत थी कि आज कहीं भांग के गोले थे, कहीं उफ्यून (अफीम) की चुस्कियां और मैनाब (उम्दा शराब) के दौर।

तीन दिन गुजर चुके। दस बजे रात का वक्त था। इलाहाबाद जेल के दरवाजे पर बर्की लालटेन (बिजली की लालटेन) रौशन थी। कारे सिंह और रुस्तम खां वर्दियां पहने, संगीनें लिये पहरा देते थे। रुस्तम खां ने बंदूक पटककर कहा, 'इस नौकरी से नाक में दम आ गया। यह मजे की मीठी नींद सोने का वक्त है या खड़े-खड़े कवायद करने का।'

कारे सिंह का ध्यान किसी दूसरी तरफ था। यह बात कान में न पड़ी। दफअतन (अचानक) रुस्तम खाँ के पास जाकर बहुत राजदाराना लहजे में बोले, 'यार, तुमसे एक बात कहूं? पेट के हलके तो नहीं हो, जान जोखिम है?'

रुस्तम खाँ ने पुरयक़ीन (आश्वस्त करते हुए) अंदाज से पूछा, 'क्या मुझ पर भी एतबार (भरोसा) नहीं है? आजमा कर देखो।

कारे सिंह को यकीन आ गया, बोले, 'तीन दिन में रोज इस वक्त जेल के अंदर से कोई मेरे पास कागज के पुरजे फेंक दिया करता है, बस एक ठीकरे में लिपटा हुआ मेरे सामने ही आकर गिरता है और मजमून सबका एक। यह देखो।

रुस्तम खाँ ने हैरत आमेज इश्तियाक के साथ (आश्चर्यचकित - उत्सुकता के साथ) पुरजों को लिया और बहुत आहिस्ता-आहिस्ता पढ़ने लगे। 'ठाकुर कारे सिंह को हरनाम देवी का बहुत-बहुत प्यार। अगर बीस हजार नकद, पांच हजार का जेवर और एक मोहब्बत से भरा हुआ दिल लेना हो तो मुझे यहां से किसी तरह निकालो, जिंदगी की आस तुम्हीं से है।'

रुस्तम खां को रश्क हुआ। यह कुछ ऐसा गबरु जवान तो नहीं है। हां, जरा रंग साफ और बदन सुडौल है। बोले, 'यार, तुम्हारे नसीब तो जागते हुए नजर आते हैं।'

कारे सिंह ने गरमजोशी (उत्सुकता) से कहा, 'जागेंगे तो हम दोनों के नसीब साथ ही जागेंगे।'

रुस्तम खाँ ने सच्ची हमदर्दी और हौसला अफजाई की नजर से देखा। रश्क (ईर्ष्या) गायब हो गया, बोले, 'तुमसे मुझे यही उम्मीद है। मैं तुम्हारे साथ सर देने को तैयार हूँ।'

दोनों दोस्त बाहम सरगोशियां करने लगे (आपस में कानाफूसी करना)। इन पुरजों के मुतल्लिक जो शुकूक (संदेह) पैदा हो सकते थे वह पैदा हुए। कोई धोखा-फरेब तो नहीं। शायद किसी हरीफ (दुश्मन) की शरारत हो। किसी बदख्वाह (बुरा चाहने वाला) ने यह जाल बिछाया हो। लेकिन औरत का क्या एतबार (भरोसा), कहीं धोखा दे तो अपना काम निकालकर धुतकार बता दे। उसे ऐसे सैंकड़ों आदमी मिल सकते हैं। फिर उसे मेरा नाम क्योंकर (कैसे) मालूम हुआ। जरूर किसी दगाबाज की शरारत है। लेकिन रुस्तम खाँ ने अपनी पुरजोर दलीलों से ये सारे शुकूक रफा कर दिये (संदेह दूर कर दिये)। धोखा-फरेब कुछ नहीं। उसका दिल तुम पर आ गया है। तुम जैसा सजीला जवान सारी दुनिया में नहीं है। चाहे शर्त बद लो, कोई बात नहीं। उसकी निगाह तुम पर पड़ी और रीझ गई और नाम का क्या किसी से पूछ लिया होगा। हसीन औरत है, लाखों का कारोबार है। और बिल्फर्ज (यदि) धुतकार ही बता दे, दो-चार महीने तो उसकी सोहबत का लुत्फ उठाओगे। इतने दिनों में तो मालामाल हो सकते हो, चाहे सोने की दीवारें बनवा लो। कारे सिंह की निगाहों में रुस्तम खाँ उस वक्त एक निहायत आजमूदाकार, जी-फहम और वफा शिआर दोस्त (अत्यंत अनुभवी, समझदार और वफादार) मालूम होता था। उसके सारे शुकूक (संदेह) मिट गये।

इन्किताई अंदाज (रुकते-रुकते) से बोला, 'तो तुम्हारी यही सलाह है?'

रुस्तम खां ने मुस्तिकलि आवाज (दृढ़ता) से कहा, 'हां।'

कारे सिंह, 'कुछ आग-पीछ न करें?'

रुस्तम खाँ, 'आग-पीछ करके पछताओगे। मोती डूबने ही से मिलता है।'

ये बातें हो ही रही थीं कि दोनों सिपाहियों के सामने एक ठीकरा कागज में लिपटा हुआ आकर गिरा। रुस्तम खाँ ने दौड़कर उठा लिया। यह उफ्यून की तरंग हो या तरक्की की जानिब से मायूसी। बावजूद ये कि इस मामले में उसकी हैसियत महज (केवल) एक मुशीर (सलाहकार) और हमदर्द की थी, लेकिन जोश और हौसले में वह असल हीरो से कई कदम आगे था। पुरजा खोलकर पढ़ने लगा, 'जवाब का इंतजार है, मैं यहां बागीचे में खड़ी हूं।'

बारूद में आग लग गई। जब्त और अखलाक (धैर्य और नैतिकता) की दीवार तो खैर कमजोर थी, खौफ की मजबूत और संगीन दीवार भी हिल गई। रुस्तम खाँ ने वह सवाल किया जिसका सिर्फ एक ही जवाब हो सकता था। कारे सिंह ने बुजदिलाना लहजे (कायरता के अंदाज) में कहा, 'मैं भी तुम्हारे साथ हूं।'

लेकिन जब कारे सिंह जीना (सीढ़ी) लाने के लिए चला ताकि अहाते की ऊंची दीवार पर चढ़े तो हाथ और पेट थर-थर कांप रहे थे। कौल (बातों) के हवाई अहाते से निकलकर अब वह अमल (काम) के दरवाजे पर खड़ा था। और सोच रहा था कि जीने (सीढ़ी) को उठाऊं या न उठाऊं, अगर कोई देख ले, किसी दूसरे सिपाही की नजर पड़ जाये या रुस्तम खाँ ही दगा कर बैठे तो जान आफत में फंस जाए। इस हैस बैस (दुविधा) में उसे देर हुई तो रुस्तम खाँ लपकते हुए आये और किसी कदर वाइजाना दुरुश्ती (व्यंग्यात्मक स्वर) में बोले, 'यहां खड़े-खड़े जीने के नाम को रो रहे हो क्या? चूड़ियां क्यों नहीं पहन लीं?' कारे सिंह ने नदामत (शर्मिंदगी) से सर झुकाकर जवाब दिया, 'भई यह काम मेरे बूते का नहीं, मैं क्या करूं!' रुस्तम खां उन सरीउल एतकाद (जल्दी विश्वास करने वाले) आदमियों में से था, सर तसलीम होता है मगर दलीलें नहीं होतीं, बोला, 'अच्छा हटो, मैं ही ले जाता हूं।'

यह कहकर उसने लंबी सीढ़ी को कंधे पर उठाया और लाकर उसे जेल की दीवार से खड़ा कर दिया। अब हफ़्त ख्वाँ (कठिनाई) की पहली और दुशवार मंजिल दरपेश (सामने) हुई। जीने पर चढ़कर अंदर कौन जाए। कारे सिंह जानता था अगर मैंने जरा भी ताम्मुल (संकोच) किया तो रुस्तम खाँ के कदम जीने पर होंगे। और तब सेहरा भी उसी के सर होगा। जो राजदां था वह रकीब बन जाएगा। रुस्तम खां की जिंदादिली ने कुछ उसे भी गरमाया। जीने पर चढ़ा लेकिन इस तरह जैसे कोई सूली के तख्ते पर लिये जाता है। हर एक कदम के साथ दिल नीचे बैठा जाता था और बड़ी मुश्किल से जीने के डंडों पर पैर जमते थे। जमीर की आवाज अर्सा हुआ बंद हो चुकी थी। लेकिन सजा का खौफ बाकी था। मच्छर के डंक से इंसान बेहिस हो सकता है, लेकिन कौन है जो तेज भाले के सामने सिपर हो जाएगा।

कारे सिंह पछताता था और अपने तई (प्रति) कोसता था कि नाहक (बेकार) बैठे-बिठाये अपनी जान आफत में फंसाई। मालूम नहीं सुबह को क्या गुल खिलेंगे और यह यकीनी अम्म (आवश्यंभावी) था कि अगर रुस्तम खां नीचे न खड़ा होता तो वह बखैर व आफियत (कुशलता पूर्वक) उतर आने के लिए देवताओं की मनौतियां करता। इस तरह मचलते और हिचकते आधी मंजिल तै की।

आधा रास्ता तै करने के बाद कारे सिंह को एक तरह की जौलानी (स्फूर्ति) महसूस हुई। जौलानी (स्फूर्ति) क्या थी, तवक्कुल की हिम्मत थी। उसने तेजी से कदम उठाये और आन की आन में जेलखाने की दीवार पर था। वहां पहुंचते ही उसने दूसरी जानिब निगाहें दौड़ाई और उसके दिल व जिगर में गुदगुदी हो गई, हरनाम देवी एक रविश में खड़ी अपनी तरफ बुला रही थी। यह लिखना कि कारे सिंह किस तरह अपने साफे को जीने के एक डंडे से बाँधकर नीचे उतर गया और वहां उस नाजनीन ने उससे राज व नियाज या इश्क व मोहब्बत की बातें कीं। बाहम (एक-दूसरे से) क्या-क्या अहद व पैमान (वादे-कसमें) हुए और फिर किस तरह वह उसे दीवार के ऊपर लाया, यह एक तूल तवील (बहुत लंबी) दास्तान है। खुलासा यह है कि कारे सिंह ने वही किया जो हर एक मनचला आशिक ऐसी हालत में कर सकता था। हरनाम देवी को तूल व अरज (कद-काठी) से काफी-वाफी हिस्सा मिला था और कारे सिंह ने जब उसे अपनी पीठ पर लादा कि चौड़ी मोरी को उबूर (पार) करे तो उसकी कमर टूटी जाती थी। हसीना ने आसन भी ऐसी खूबसूरती से जमाया था गोया (जैसे) कोई शहसवार है, मगर कारे सिंह ने यह मुसीबतें खंदा पेशानी (सर झुकाते हुए) झेलीं। यह सब इश्क के तबुर्रकात हैं। हरफ-ए-शिकायत (शिकायत का एक शब्द) जबान पर न लाया। हां दिल से मजबूर था। इस तरह जब घंटे भर की जानकाही (मेहनत) के बाद फिर रुस्तम खां के पास आया तो दम फूल रहा था

और सांस बदन पसीनी में शल (भीगा) था। रुस्तम खां ने उसे गोद में उठा लिया और हरनाम देवी से बहुत मुअद्बाना (अदब के साथ) लहजे में कहा, 'बाई जी, इस गुलाम का भी खयाल रहे।'

वक्त निहायत बेशकीमती (मूल्यवान) था। हरनाम देवी बरगद की आड़ में खड़ी हो गई। दोनों सिपाहियों ने चटपट वरदी उतार फेंकी और तब रुस्तम खां ने दूसरे सिपाही को जगाकर पहरा बदला। यह एक पहाड़ी था, बहुत गुर्राया कि अभी बारह नहीं बजे, अभी से दिक (परेशान) करने लगे, लेकिन रुस्तम खां की मिन्नत और व समाजत ने उसे ठंडा किया। इधर वह पहरे पर आया, उधर यह तीनों आदमी शहर की तरफ चले। हरनाम देवी ने सब्जी मंडी का पता दिया था। आगे-आगे रुस्तम खां कंधे पर बंदूक रखे फाखिराना (गौरवपूर्ण) अंदाज में चले जाते थे गोया (जैसे) कोई मारका (जंग) जीतकर आए है। बीच में हरनाम देवी थी, शर्मीली और मती (कजा)...(अपठनीय) कारे सिंह सबसे पीछे थे, खामोश और खायफ (चिंतित और डरे हुए) कदम-कदम पर खटका होता था कि कहीं सिपाहियों की फौज पीछे न आती हो। इस तरह करीब निस्फ मील (लगभग आधी मील) चलने के बाद पुख्ता सड़क मिली। हरनाम देवी एक ठंडी सांस लेकर बैठ गई और बोली कि अब मुझसे नहीं चला जाता, मेरे पांव मन-मन भर के हो गये। एक यक्का (इक्का) लाओ। रुस्तम खां बहुत नादिम (शर्मिंदा) हुए कि यह तजवीज (प्रस्ताव) उनकी जानिब से होनी चाहिए थी। अपनी गलती पर मुतस्सफ (पछताना) हुए और तब बंदूक कारे सिंह के सुपुर्द करके यक्के (इक्के) की तलाश में चले। आधी रात थी। चांदनी छिटकी हुई, सब्जा जार का फर्श (हरी-भरी घास का फर्श) आँखों लुभाने वाला दरख्त का ठंडा साया रूपहले फूलों से आरासता (सजा हुआ) सारी फितरत (प्रकृति) नगमे और नशात के नशे में मतवाली हो रही थी। यह कुदरती बात थी कि कारे सिंह के दिल में आशिकाना जज्बात जोश पर आयें। हरनाम देवी ने एक दिलफरेब अदा के साथ उसके दोनों हाथ पकड़ लिये और बोली, 'यह बहुत शरारत करते हैं, मैं इन्हें बांध दूंगी।'

कारे सिंह को मटके भर भंग का नशा था, दिल जुल्कों में उलझ चुका था, गर्दन में वफा की रस्सी पड़ी हुई थी। सारा फासला खत्म हो गया। हरनाम देवी फंदे लगाते-लगाते थक गई लेकिन वह अपनी मस्ताना तरंग में उन शीरीं (मीठी) अदाओं की बहार लूटता रहा।

तब उसकी आंखों के सामने से तिलिस्म (भ्रम) का परदा हटा। हरनाम देवी ने साड़ी उतार फेंकी और उसके बजाय एक गठीला, बड़ी-बड़ी मूंछों वाला जवान हाथ में बंदूक लिये खड़ा नजर आया। एक पांच हाथ की साड़ी इंसान को कितना धोखा दे सकती है। कारे सिंह ने पैर पटककर कहा, 'अरे वासीराम!'

इसी बीच रुस्तम खां यक्का (इक्का) लाते हुए दिखाई दिये। घासीराम ने वह साड़ी उठाकर कारे सिंह को उढ़ा दी और बोला, 'ये तुम्हारी हरनाम देवी तुम्हारे सुपुर्द है। इसके बदले में मुझे यह बंदूक दे दो। अब मैं चलता हूं। मेरा कुसूर माफ करना।'

कारे सिंह ने फरयाद मचाई लेकन घासीराम लापता हो चुका था, रुस्तम खां पर इस सानिहे (घटना) का जो असर हुआ वह मोहताज-ए-बयान नहीं। उम्मीदों से भरे हुए मीठे ख्वाब परेशान हो गये (बिखर गये) इस राजदारी व कोशिश व हमदर्दी का सिला ये मिला कि कारे सिंह ने सारा इल्जाम उसके सर रखा और जब वह सफाई देने लगा तो गरीब को ऐसी पटखनी दी कि उसकी कलाई टूट गई। उसी रात को शहर में दो मुसल्लह (सशस्त्र) डाके पड़े। रोजाना (दैनिक) अखबारों ने लिखा कि मशहूर डाकू घासीराम इलाहाबाद जेल से निकल भागा है और गिर्द व नवाह (चारों तरफ) डाके और लूट की गरम बाजारी है।

*210, कावेरी हॉस्टल, जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी,*
*नईदिल्ली 110067 मोबा. 9717984657*

ललित निबंध

# राजा तो नंगा है

गोविंद गुंजन

नंगा शब्द संस्कृत शब्द 'नग्न' से बना है। संस्कृत का जब ' बोलबाला' था उन दिनों 'नग्न ' शब्द का अर्थ था, 'जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो, जो कोई कपड़ा न पहने हो। निर्वस्त्र। ज्यादा व्यंजना की भावना होने पर 'दिगंबर' कहा जाता था। बोलियों के भीतर आकर शब्दों के विकास की यात्रा भी बड़ी रोमांचक है। वहां तद्भव शब्द अपने मूल तत्सम अर्थ के साथ-साथ उसकी व्यंजना को और भी गहरी कर लेते हैं। अंग्रेजी में ऐसे शब्दों को 'स्लेंग' कहा जाता है। ये शब्द बहुत अनौपचारिक और कुछ मुहावरे होते हैं। कभी-कभी कुछ क्षेत्रीय स्तर पर ऐसे शब्द और मुहावरे बोले जाते हैं। इनमें कई बार अपभाषा और अशिष्टताएं भी होती हैं। पारंपरिक शब्दकोशों में पहले इन शब्दों को जगह नहीं मिली होती थी, इसलिए अंग्रजी में अब तो 'स्लेंग डिक्शनरी' भी अस्तित्व में आ चुकी है, जो समय की मांग भी है, परंतु अभी हमारी भाषा में कोई ऐसा उल्लेखनीय काम नहीं हुआ है।

उदाहरण के लिए यदि बोलचाल में जब कोई व्यक्ति किसी के बारे में कहता है कि 'वह बहुत नंगा आदमी है, उसके मुंह मत लगो, या जब वह किसी औरत से गुस्से में कहता है कि 'जा तेरे जैसी नंगी औरत मैंने दूसरी नहीं देखी' तब यहां नंगा या नंगी का अर्थ शब्दकोष के मान्य अर्थ के अनुसार 'निर्वस्त्र' नहीं होता। इस वाक्य को सुन कर या पढ़कर हमारे चित्त में किसी वस्त्रविहीन आदमी या स्त्री का अर्थ उद्भुत नहीं होता। बोलचाल की बोलियों में तब 'नंगा' का अर्थ हो जाता है—बेशर्म, निर्लज्ज, बेइज्जत, बदनाम। लुच्चा, पाजी, दुराचारी, हठी। यहां आदमी का 'नंगापन' बहुव्यंजक अर्थ में प्रकट हो रहा है। यहां ऐसा व्यक्ति भी नंगा कहा जाता है- जिसके बीबी बच्चे न हो. कहावत है कि 'नंगे से खुदा भी डरता है। या 'नंगे के नौ ग्रह बलवान' ऐसे लोग जो दरिद्र होकर भी अपनी अकड़ में रहते हैं, उनके बारे में कहा जाता है 'नंगे नवाब किल्ले पर घर। ऐसे लोगों से अच्छे-अच्छे डरते हैं, कहते हैं ना 'नंगा नाचे भूत भागे।'

नंगा शब्द लोक भाषाओं में बहुव्यंजक होकर प्रयुक्त होता है। लोक में यदि कोई किसी नंगे घोड़े की सवारी कर रहा है, उसका अर्थ है ऐसा घोड़ा जिसकी पीठ पर काठी कसी हुई ना हो। जब आप नंगे पैर चल रहे हैं तब नंगे पैर का अर्थ बिना चप्पल जूते के होता है। जब कहा जाता है कि सूर्य ग्रहण को 'नंगी आखों से' मत देखो' तब नंगी आंख का अर्थ भी समझ में आसानी से आ जाता है। जब कहा जाता है कि 'नंगे सिर धूप में मत जाओ' तब सूरज देवता के सम्मान में उसी तरह सिर ढंककर जाने को कहा जाता है जैसे किसी संस्कारी बहू को अपने जेठ के सामने सिर पर पल्ला लेकर जाना चाहिए। गर्मी में जेठ का महीना संस्कृत के ज्येष्ठ से ही बना है, पर वहां 'ज्येष्ठ' शब्द अपने सारे अर्थ को 'बड़े' में समेट लेता है। बड़ा भाई ज्येष्ठ है, तो ग्रीष्म का एक महीना भी ज्येष्ठ है।

लड़ाई-झगडे में जब कोई नंगी तलवार लेकर दौड़ रहा है, तो वहां नंगी तलवार का मतलब है, ऐसी तलवार जो

म्यान से बाहर निकली हुई है। जब किसी लाचार आदमी से अपनी वसूली छोड़ना पड़े तो कहा जाता है कि 'अब उसे नंगे से क्या मिलेगा? तब नंगे आदमी का अर्थ दरिद्र, गरीब और कंगाल हो जाता है। कहावतों में कहा जाता है 'नंगा नहायेगा क्या और निचोड़ेगा क्या'? लोक में जाकर बेशर्मी से भरे काम आदमी के 'नंगे नाच' बन जाते हैं। बोलचाल में नंगा पहाड़ भी होता है, जो ऐसा पहाड़ होता है जिस पर कोई पेड़ पौधे ना हो. वहां 'नंगा आसमान' भी होता है जब उस पर कोई बादल या घटा छाई हुई ना हो। लोग नंगे हाथों से बिजली के तार नहीं छूते। जिसके पत्ते झड़ गये हो ऐसे पेड़ को भी नंगा पेड़ कहा जाता है। नंगा साधु सुनकर नागा साधु का पता चलता है। लोक में तो सच भी नंगा हो सकता है- 'नंगा सच' उदाहरण के लिए जब समय रहते कोई व्यक्ति काम ना कर ले तो उस काम का महत्व नहीं रहता। इस बात को लेकर एक लोक कहावत है-' नंगी होकर काता सूत, बूढ़ी होकर जाया पूत' जिसका अर्थ है ऐसी फूहड़ स्त्री जो जब कपड़े बिल्कुल ही फट जाए तब कपड़ा बुनने के लिए सूत काटने बैठे और जवानी में न करके बुढ़ापे में पुत्र पैदा करे।

लोक में उद्दंड व्यक्ति को भी नंगा कहते है। कहावत है- 'नंगे के नौ हिस्से' अर्थात ऐसा व्यक्ति जो बंटवारे में खुद का हिस्सा अधिक चाहता है। जो दस हिस्सों में से कम-से-कम नौ हिस्सों पर जबरन अपना हक बताने पर उतारू हो, तब लोग हारकर, ठंडी सांस भरकर, समर्पण मुद्रा में आकर कहते हैं- ठीक है, नंगे के नौ हिस्से। लोक में तो में तुच्छ मानसिकता वाले व्यक्ति को भी नंगा कहा जाता है। एक कहावत लोक में इसी अर्थ को ध्वनित करती है- 'नंगे को लोटा मिल्यो, बार-बार हगन गयो।' एक कहावत तो ये भी है कि 'नंगों की बस्ती में धोबी का क्या काम।'

आदमी दिन पर दिन अपनी नंगाई और अपनी निर्लज्जता से अपनी संपूर्ण मानव प्रजाति के लिए खतरनाक होता जा रहा है। संबंधों की धागे तोड़ रहा है। इस वातावरण में मुब्तिला आदमी एक अंधी दौड़ में फंस गया है, जिसका उसे कोई भान तक नहीं बचा। मेरी एक छोटे सी कविता है, 'पेड़, पत्ते उतार कर नंगे हो गये/ आदमी कपड़े पहन कर।' इस नंगेपन से एक दूसरी बीमारी भी पैदा होती है जिसे आदमी का अंधापन कहा जाता है। इस अंधेपन का भी आदमी की नंगई से गहरा संबंध है। इसे समझने के लिए हमें किसी चिकित्सा शास्त्री के पास नहीं बल्कि लोकमन के पास जाना पड़ेगा।

लोक जब दर्शन की भूमिका में उतरता है तब वह हमें 'अंधों के हाथी की कहानी भी सुनाता है, जहां किसी के लिए हाथी की पूंछ एक रस्सी है, तो किसी के लिए उसके पैर खंबे हैं। असली हाथी क्या है, उसे टटोल-टटोल कर भी वह हाथी क्या है, या कैसा है, वह बता नहीं पाते। शरद जोशी के एक व्यंग्य 'अंधों का हाथी' में इसी लोककथा का आधुनिक संस्करण मिलता है, जिसमें पांच अंधे नेता हाथी को टटोलते हैं, कोई नेता हाथी की पीठ को दीवार, कोई कान को सूप तो कोई पूंछ को रस्सी बताता है। हमारी समकालीन राजनीति पर यह एक गहरा व्यंग्य था जिसमें दिखाया गया था कि नेता अंधों की तरह होते हैं, जिन्हें जमीनी हकीकत का कुछ पता नहीं होता पर वह जनता की समस्याओं को पहचानने के और उन्हें हल करने के विशेषज्ञ माने जाते हैं। नाटक में समस्याओं से जूझती जनता ही सूत्रधार है, वही समस्या को सामने लाती है, पर पूंछ को अजगर बताने वाले नेताओं की दबंगई के सामने वह सूत्रधार रूपी जनता ही मारी जाती है। ये नेता इतने नंगे है कि इनके मुंह लगना जान को जोखम में डालना है।

लोक ने इस अंधेपन की समस्या को शब्द के भीतर समाये हुए पाताल तक टटोला। धृतराष्ट्र का अंधापन केवल एक शारीरिक विकलांगता भर का मामला नहीं था। वैसे तो शारीरिक विकलांगता में किसी मनुष्य का खुद का कोई दोष नहीं होता, पर ईर्ष्या के जल से सींच-सींच कर पुष्ट किया गया मन और बुद्धि का

अंधापन क्षम्य नहीं होता। यदि धृतराष्ट्र का अंधापन विनाश का इतना बड़ा प्रतीक बन सका तो पति की सहानुभूति को हृदयंगम करने के लिए गांधारी के लिए आंखों पर पट्टी बांधकर चुना हुआ अंधापन भी कोई कम बड़ा प्रतीक नहीं बना। अपने स्वार्थ के लिए उचित अनुचित की परवाह किये बिना कोई व्यक्ति यदि कोई काम करता है तो लोक में कहा जाता है कि 'उस आदमी की आंखों पर पट्टी चढ़ी है। या कहा जाता है कि 'जब उसकी आंखों से पट्टी उतरेगी तब उसे सारी हकीकत समझ में आ जायेगी।' गांधारी का अपनी आंखों पर पट्टी बांधकर चुना हुआ 'अंधापन' लोक में आकर कितनी गहरी सच्चाइयां उजागर करता है, और इन सच्चाइयों को शब्दों के कैसे मनोग्राह्य चित्र बना कर सामने लाता है, यह महसूस करने की बात है। अंधा शब्द कितने अर्थ लेकर लोक भाषाओं में आता है, यह देखना कम रोचक नहीं है। यहां प्यार में लोग अंधे हो जाते हैं, तो उन्हें अपने प्रिय में दिव्य सौंदर्य दिखने लगता है। परंतु इसका यह एक छोटा-सा आयाम है, जबकि इस अंधेपन के अंतहीन विराट आयाम भी होते हैं।

इस अंधेपन के विराट आयामों में फंसे छटपटाते लोग सुंदर उपवन में खिले फूल तोड़ डालते हैं, उन्हें अपने पैरों से रौंद डालते हैं। एक नारकीय आग उनके मन में निरंतर जलती रहती है जिसे मन की जलन कहा जाता है। ऐसे लोग 'जलकुकड़े' भी होते हैं। इस अंधेपन के विराट प्रसार में बहते बहते ऐसे लोग दूसरों का अपशकुन करने के लिए अपनी ही नाक काट लेते हैं। संबंधों की अमृता शक्ति की अवहेलना करते हुए ऐसे लोग एक दिन संबंध विच्छेदताओं के अंधकूप में गिर कर अकेले हो जाते हैं, जो मरण से भी अधिक कष्टकारी होता है। जहां भयावह अंधेरे से भरा भीतरी अकेलापन होता हैं जिसे भरने के लिए वो लूट खसोट, हत्याएं और बलात्कार तक करने पर उतारू हो जाते हैं। फिर भी उनके भीतर का अंधेरा कम नहीं होता। अंधेरे शब्द की रचना के मूल में भी यही 'अंधता' है। जैसे कोई अंधापन, जिसमें कुछ नहीं दिखता। अंधेरे में भी कुछ नहीं दिखता, इसीलिए उसे अंधेरा कहते हैं।

यह अंधापन कई बार इतना मतलब परस्त होता है, कि उसमें आदमी को सब अच्छा ही लगता है, भले ही हकीकत कुछ भी हो। सावन के अंधे को सब कुछ हरा ही हरा दिखता है। वह हकीकत से मुंह मोड़ लेता है, और जो मन में आता है करते रहता है। स्वार्थ में अंधा होकर वह अपने रिश्ते नाते सबसे छल करता है। बूढ़े मां-बाप जिन बच्चों को अपने लिए अंधे की लाठी कहते हैं, एक दिन उनका वही सहारा टूट जाता है। एक विवशता और एक निराशा की धुंध छाने लगती है। उनके सपनों के इंद्रधनुष काली घटाओं में खो जाते हैं, और सामने होती है पुरानी छत को दरकाती हुई प्रलयंकारी बरसात जिससे होड़ लेते उनके आंसू उनके मन में आग लगा देते हैं।

इस अंधेपन ने हमारी दुनिया में बहुत 'अंधेर' मचा रखी है। यहां लोग एक-दूसरे के अंधेर को सहने के लिए बाध्य हैं। मजबूरी इतनी बड़ी है कि लोग यह कह कर संतोष कर लेते हैं कि 'हम्माम में सब नंगे हैं' तब लोग यही सच बता रहे होते हैं कि 'सब का एक-सा हाल है इसलिए किसी को हक नहीं कि दूसरे को बुरा कहे। इसका एक अर्थ यह भी है कि एक ही बुराई में सब मुब्तला हैं. लेकिन फिर यह लोक दर्शन अंतत: इस नतीजे पर पहुंचता है कि 'अंधे के आगे रोना अपने दीदे खोना।' जहां कोई किसी की तकलीफ को देखने वाला ना हो, वहां तो अंधेर ही मचना है। भारतेंदु जी की 'अंधेर नगरी चौपट राजा' को कौन भूल सकता है?

किसी पीड़ित व्यक्ति की न्याय की पुकार की पराकाष्ठा 'अंधा क्या चाहे दो आंखें' से ध्वनित होती है तो मतलब परस्त आदमी ऐसा अंधा है जो रेवड़ी तो बांट रहा है पर आप आप को ही देता है। इधर उम्मीद का आखरी सहारा 'कानून भी अंधा होता है। कोई ऐसा अकल का अंधा भी होता है जो गांठ का पूरा होता है। जिसके 'पा लागी' में

भी लोग लगे रहते हैं। भले ही उससे कुछ ना मिले। फिर अंत में यही सोचकर संतोष कर लेते हैं कि 'अपने जोगी नंगे तो का दिए वरदान'। मतलब यह कि जिसके पास खुद के कोई साधन न हो वो आपको क्या देगा?

नंगा का एक अर्थ है खुला हुआ। बोलियों में एक शब्द है 'उघाड़ा' जैसे 'उघाड़ा बच्चा'। मतलब है 'नंगा बच्चा' बोलियों का यह उघाड़ा शब्द उसी खुलेपन के अर्थ को ध्वनित करता है क्योंकि यह उघाड़ने की क्रिया से बना है। जिसका अर्थ है 'खोलना' लोक में बिना ढके सिर को भी 'उघाड़ा सिर' कहा जाता है।

उघाड़ना एक बड़ी महत्वपूर्ण क्रिया है। पुराने समय में जब किसी के पास कोई काम नहीं होता था तो वह 'पाजामा उधेड़कर सीने लगता था। बैठे से बेगार भली यही उनका जीवन दर्शन था। अपने मुख में निरंतर धातु और लिंग को रखने वाले रसिक व्याकरणाचार्य निरंतर शब्दों को उघाड़ने में सुख पाते थे, दूसरी तरफ किसान, मजदूर, चरवाहे, सरकारी और दरबारी कारकून, सिपाही, सुतार, लोहार, कुम्हार, सभी वर्ग अपने-अपने रोजमर्रा के अनुभवों को शब्दों में पिरोने के लिए शब्दों को अपनी जरूरत के मुताबिक उघाड़ उघाड़ कर कुशल शिल्पी की तरह उपयोग करते थे, इसी कारण लोक में आकर शब्दों के उघाड़े हुए ये व्यापक अर्थ लोकप्रिय होते चले गये। कहावतों, लोकोक्तियों,और मुहावरों में इनकी अर्थ छटा निखरने लगी। कभी-कभी यह अंधापन दूसरों को अक्ल भी दे देता है। तालस्ताय की एक लघुकथा है कि 'अंधेरी रात में एक अंधा सड़क पर जा रहा था, जिसके सिर पर एक मिट्टी का घड़ा था, और हाथ में एक लालटेन। उसे रास्ते में एक आदमी मिला जिसने उसका मजाक बनाते हुए कहा- 'तुम अंधे हो कर भी लालटेन लेकर चल रहे हो। तुम्हारे लिए तो दिन रात एक जैसे अंधेरे हैं, फिर इस लालटेन से तुम क्या देख लोगे जो बेकार ही यह लालटेन ले कर चल रहे हो। तब अंधे ने कहा- 'यह लालटेन मेरे लिए नहीं, तेरे लिए जरुरी है कि रात के अंधेरे में कहीं मुझसे टकरा कर तू मेरा मिट्टी का यह घड़ा न गिरा दे।'

इस अंधेपन को भी समझना उतना ही जरूरी है जितना आदमी के नंगेपन को। यह अंधापन जो आंख वालों में ज्यादा और बिना आंख वालों में बहुत कम होता है, बहुत भयावह होता है। इस अंधेपन में जरूरी नहीं कि 'अंधस्य वर्तकी लाभ' की तर्ज पर हर अंधे के हाथ में बटेर लग ही जाए, भले कोई अंधेरे में कितने ही तीर चलाता रहे। इस सच को समझना भी जरूरी है कि जहां लोग एक दूसरों की ठकुरसुहाती करने में लगे हो' जैसे 'उष्ट्रानां विवाहेषु गीततं गायंति गर्दभाः, परस्परं प्रशंसंति अहो रूपः अहो ध्वनिः..' (एक ऊंट की शादी में गधे गीत गा रहे थे। गधों ने ऊंट के रूप की प्रशंसा करते हुए कहा- अहा, क्या रूप पाया आपने, तो ऊंट ने जवाब में गधों से कहा, आपकी गायन विद्या की क्या बात है, कितना मधुर स्वर पाया है आपने। ऐसे परस्पर ठकुरसुहाती से भरे वातावरण से बचा जाए अन्यथा धीरे-धीरे यह अंधेर बढ़ती ही रहेगी। जो मन को विकलांग बना दे वही अंधापन एक दिन ले डूबता है।

हमारी लोककथाओं में एक राजा की कहानी है जिसमें दिव्य वस्त्रों के लालच में राजा नंगा हो जाता है, पर उसके मंत्री और उसके दरबारी उसके ना दिखाई देने वाले दिव्य वस्त्रों की प्रशंसा करते नहीं थकते। बाजार से जब राजा का जुलूस निकला तब जिस बच्चे ने चिल्ला कर कहा था कि 'अरे, राजा तो नंगा है' वह बच्चा हमारी जिंदगी से गुम हो गया है। उस बच्चे को कहानी से बाहर निकलकर अपनी असल जिंदगी में ढूंढा जाना चाहिए। शायद तब उसके साथ हम भी आदमी के नंगेपन के खिलाफ आवाज उठा सकें। अभी तो हम बहुत बड़े हो गये हैं, पर फिर भी उस बच्चे जितने बड़े नहीं हुए जिसके बारे में वर्ड्सवर्थ कहते थे कि 'चाइल्ड इज फादर ऑफ मन।'

*- 18, उत्तरायण, सौमित्र नगर, सुभाष स्कूल के पीछे, खंडवा (म.प्र.) 450001 मोबाइल 09425342665*

# वे दिन और बातें : सरगुजा में डॉ. दीपक जी के साथ बिताये क्षण

श्यामसुंदर दुबे

अपने किसी बहुत नजदीकी व्यक्ति पर कुछ लिखना आसान नहीं है। जिसे सतत् अनुभव किया जाए, उसे शब्दों में बांधने में कठिनाई इसलिए आती है कि वह एक आदर्श बनकर हमारे आत्मसत्य में समाहित हो जाता है। एक तरह से यह कहा जा सकता है कि हमारे आचरण में और हमारे लेखन में यह अक्सर अभिव्यक्त होता रहता है, तो फिर संक्षिप्त शब्दावली में उसे समेटना अपने को सांसत में डालना है। डॉ. देवेंद्र दीपक पर संस्मरण लिखना मेरे तईं एक लाघव है- मैं तो चाहता था कि कभी उनकी जीवनी लिखूंगा किंतु अभी तक यह नहीं कर पाया अलबत्ता मेरे कथा लेखन में, मेरे निबंध लेखन में उनकी छवियां उदग्र होती रही हैं। इस संस्मरण में जो भी लिख रहा हूं, बस एक तरह से अपने सुंदरतम अतीत को ही स्मरण करने जैसा है।

यह शायद 22 सितंबर 1969 की अपराह्न बेला थी। अंबिकापुर के बनारस रोड़ पर स्थित प्रोफेसर्स क्वार्टर्स के एक आवास के समक्ष मैं खड़ा था। मेरे साथा प्रो. एस.एस. बग्गा थे। मैंने आवास की प्रथम दर्शना दीवार पर चिपकी नेम प्लेट को देखा तो उस पर अंकित था- डॉ. देवेंद्र दीपक। ये उस समय का वह नाम था, जो महाविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष के रूप से जाहिर थे। मुझे ऐसा बग्गा जी ने बताया था। हुआ यह था कि मैं सागर विश्वविद्यालय में रिसर्च स्कॉलर था और इसी दौरान मेरी नियुक्ति अंबिकापुर के कॉलेज में हुई थी। मैंने कॉलेज में ज्वाइनिंग दी तो बग्गा जी ने मुझे स्नेहवश पकड़ लिया। वे दमोह से पर्यवसित होकर परिवार सहित इधर आ चुके थे- सागर विश्वविद्यालय के छात्र रहे थे और डॉ. देवेंद्र दीपक के पड़ोसी और उनके मित्र थे। उन्होंने ज्वाइनिंग के दिन ही बता दिया था कि डॉ. दीपक दिल्ली गये हैं। उनके लौटते ही उनसे भेंट करना मुकर्रर किया गया था। और वे लौट आये थे। हम उनसे मिलने ही उनके आवास के समक्ष थे।

कॉलबेल का घनघना बंद हुआ तो अंदर से आवाज आई, 'चले आईये जी! दरवाजा उढ़का हुआ है।' हम अंदर पहुंचे तो मैंने दीपक जी को देखा। वे दर्म्याना कद के गौरे-चिट्टे किंचित स्थूल काय सुदर्शन व्यक्तित्व वाले पुरुष दिखे। वे नाईट सूट पहने हुए थे। मैंने उन्हें नमस्कार किया। हम कुर्सियों पर थे और बग्गा जी मेरा परिचय डॉ. दीपक को दे रहे थे। अभी तक विभाग में वे अकेले थे। एम.ए. तक कक्षाएं थीं। स्वाभाविक है कि मेरी आमद से वे प्रसन्न थे। उन्होंने मेरा नाम-धाम ध्यान से सुना। फिर उठे। एक डायरी लाये। उसके पन्ने पलटे। मेरी ओर देखा - जैसे मेरे चेहरे को अपनी डायरी के पन्ने पर खोज रहे हों। बोले, 'आपका नाम और आपका पता तो मेरी इस डायरी में पहले से ही दर्ज है। मैंने पढ़ा 'श्यामसुंदर दुबे रिसर्च स्कॉलर, शनीचरी जैन मंदिर, सागर (म.प्र.)'। वे मेरी और देख रहे थे और मैं उनकी डायरी को देख रहा था कि ये डायरी है कि जादू का पिटारा, जिसमें मेरे जैसे अज्ञात कुलशील बाईस-

तेईस के लड़के का नाम-पता दर्ज है। और सचमुच वह डायरी नहीं थी- जादू का पिटारा ही थी। जिसमें अनेक जादूगरों के नाम पता और उनके जादुई करतब अंकित है। उसमें सैकड़ों साहित्यकारों के पते लिखे थे, और साहित्यकार आखिर में कलम का जादूगर ही तो है। मेरी उत्सुकता भांपकर उन्होंने स्वयं बताया कि मेरा यह पता उन्होंने कश्मीर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'धर्ममार्ग' से लिया था। उन दिनों मेरी कविताएं इस पत्रिका में प्रकाशित हो रही थी, अब मैं डॉ. दीपक को समझने की कोशिश कर रहा था। एक निरहंकारी औदार्यपूर्ण आत्मीयता उनके पास थी। मैं भूल गया था कि मैं अपने घर से 600 किलोमीटर दूर हूं। वे छोटे से छोटे साहित्यकार को उन बड़े साहित्यकारों के नाम के साथ अपनी डायरी में शामिल कर रहे हैं, जो उस समय के जाज्वल्यमान थे। यह समभाव दीपक जी को जीवन की उच्चतम समभूमि पर खड़ा किये हुए है।

वे एकाकी थे किंतु अगेही गेही थे। घर-गृहस्थी की व्यवस्था को कुशलता से कर रहे थे। उनके साथ उनके वैवाहिक जीवन का एक अघटित घट गया था। वे अपने विषय में कुछ भी नहीं छिपाते हैं। खुली पुस्तक हैं। बस इस पुस्तक को पढ़ने की सामर्थ्य हम हासिल भर कर लें। अपने इस खुलेपन के कारण कभी-कभी उनकी खुली किताब को पढ़ने की सामर्थ्य न रखने वाले पढ़े-लिखे भी इस तरह का प्रसंग ले आते थे। इसका एक कारण यह था कि दीपक जी की प्रतिष्ठा छात्रों में, अधिकारियों में और नगर निवासियों में सर्वाधिक थी - अब ऐसी प्रतिष्ठा कभी-कभी सहयोगियों को असहनीय हो जाती थी। मैंने यह परिलक्षित किया कि वे अविचलित रहने वाले हैं। वे बैरभाव की परिभाषा तक नहीं जानते। यही वजह है कि वे अपनी सदाशयता में सर्वप्रिय हैं।

अंबिकापुर में वे मेरे संरक्षक थे। हर प्रकार का सहयोग करने वाले वे बारीक से बारीक समस्या के निदान का अवसर तलाश लेते थे। मैं स्वयंपाकी था। भोजन बनाने आदि में विलंब लग जाता था इसलिए कभी-कभी कॉलेज पहुंचने में उतावली मच जाती थी। दीपक जी एक दिन एक पुराना भोजन पकाने का यंत्र लेकर आए। यह पीतल का तीन खंड का कुकर जैसा पात्र था। उनके स्वयं के उपयोग में आने वाला। मुझे इससे कुछ सहूलियत हुई। कोई ऐसा दिन व्यतीत नहीं होता था - जब हम एक साथ मिल-भेंट न लें। बाजार जाना तो साथ-साथ जाना मुझे दुकानदारों से परिचित कराना। चीजें खरीदने और उनकी गुणवत्ता की जानकारी से अवगत कराने में मेरी मदद करना, विभिन्न कार्यक्रमों में मुझे ले जाना और मेरे लिए प्रतिष्ठापूर्ण अवसर दिलाने के लिए प्रत्येक समय समुद्यत रहना। यहां यह न समझ लिया जाए कि वे मेरे ही हितसंरक्षक थे बल्कि बाद में मुझे यह लगा कि यह उनका स्वभाव है। वे परार्थ बहुत कुछ करते रहते हैं। यह उनके चित्त की द्रवणशीलता है।

शाम को हमारी बैठकों में साहित्य ही केंद्र में रहता था। स्वाभाविक ही है कि अंतराल बीतते मेरे संबंध अन्य प्राध्यापकों और नगर के लोगों से भी बनने लगे। दीपक जी के साथ की जाने वाली मेरी बैठकी के कारण कुछ जन असहज थे। मैं जानता था दीपक जी की एक विचारधारा है। मैं उनके यहां राष्ट्रधर्म, ब्लिटज, युगधर्म जैसी पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता था। वे अपनी विचारधारा को छिपाने नहीं बल्कि वे उसे कर्म में परिणत करने को सदैव इस रूप में उद्यत रहते थे कि सरगुजा का विष्णु भोग चावल हम खा रहे हैं, तो अपने भीतर के विष्णु को जगाएं। वे सरगुजा के वनवासी जनों की सेवा में भी संलग्न रहते थे। सरगुजा के आदिवासी छात्रों को सुविधा देने हेतु उन्होंने एक छोटा-सा हॉस्टल भी प्रारंभ कर दिया था। साहित्य, समाज और सेवा तथा सर्जन के समन्वय के केंद्रबिंदु डॉ. दीपक के साथ मेरा रिश्ता साहित्य के सरोकारों वाला अधिक था। वे धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कल्पना, ज्ञानोदय जैसी पत्रिकाएं भी बुलाते थे और उनमें से उपयोगी सामग्री का चयन भी करते थे।

साहित्य के स्तर पर एक उदारमना शिक्षक के रूप में मैंने उन्हें पाया। वे साहित्य के शिक्षक थे और छात्रों के प्रति जागरुक थे इसलिए सदैव नई-नई सामग्री तलाशते रहते थे। उनकी शोध दृष्टि का मैं कायल था। उन्होंने छात्रों में अपने लोक-साहित्य के प्रति रुचि जाग्रत करने हेतु लोकगीतों के संकलन का काम दिया था। यह पूरा भी हुआ था। महाविद्यालय की पत्रिका का उन्होंने सरगुजा विशेषांक परिकल्पित किया और प्रकाशित किया। यह सरगुजा का मिनी गजेटियर था।

मैं मानता हूं कि साहित्य दीपक जी की शिराओं रक्त की तरह प्रवाहित है। वे शैलीकार हैं। उनकी कविता, उनका गद्य सूत्रात्मकता में विकसित है। उनका बोलना भी इसी तरह का है। भाषा में नयी अथछटाएं समावेशित करने का यह गुण प्रबोधित करने वाली क्षमता देता है। वे प्रबोधन के साहित्यकार हैं। हम अक्सर तत्कालीन साहित्यिक घटनाओं-दुघर्टनाओं पर बहस करते थे। ये वह समय था जब साहित्य में नक्सलवाद का जन्म हो रहा था। विद्रोही पीढ़ी के नाम से किसिम-किसिम की कविता का सैर-दौरा चल रहा था। साहित्य के क्षेत्र में व्यापक हलचल और कूदफांद थी।

हम उस समय के साहित्य की नब्ज पर अपनी अंगुली रखे थे। चाहे कविता हो, चाहे निबंध, चाहे कथा। ये सब हमारे विमर्श के दायरे में थे। दीपक जी के भीतर एक खिलंदड़ व्यक्तित्व भी छिपा थ, जो गाहे-बगाहे व्यंग्य और हास्य से हमारे गंभीर हो रहे मुखौटे को हंसी की रेखाओं के रंग से भर देता था। अनेक तनावों के बीच भी जीवन की लय के इस अनुरंजनी राग के गायन की कला दीपक जी से सीखने लायक थी, मैं सीख रहा था। हम खूब आनंद लेते थे। 'लुकमान अली' की कविता के खूब मजे लिए। के.पी. सक्सेना के हास्य की चर्चा करते थे - कुबेरनाथ राय पर, धर्मवीर भारती पर, विष्णुकांत शास्त्री पर और अनेक नए-पुराने साहित्यकारों की हम चर्चा करते, वे हमारी गिरफ्त में रहते थे। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के लिए नए वर्ष की मंगलकामनाओं हेतु दीपक जी अपने समय के अच्छे कवियों की पंक्तियां खोजते थे। साहित्य में इस समय जो अपने समय जो विद्रोह-विद्रोह चल रहा था - वह हम लोगों को कृत्रिम लग रहा था- था भी कुछ यही। कविता के जितने नामधारी आंदोलन चल रहे थे - उनके उफनते महासागर में हमने भी एक कंकड़ी फेंकने का साहस किया। दीपक जी के साथ एक विशेष बात थी कि वे उत्साहित करने में कोताही नहीं बरतते। उन्होंने सार्थक कविता के नाम से एक आंदोलन की शुरूआत मुझे साथ लेकर की। कविता के शील और कविता के आक्रोश के बीच से कविता की सर्जनात्मक शक्तियों के उन्मेष का एक रास्ता तलाशा गया। सात सूत्र बनाये गये। सभी वर्गों के कवियों से अपने उद्देश्य के अनुकूल कविताएं आमंत्रित की गईं। खूब कविताएं आईं फिर कीर्तिकाम प्रकाशन से सार्थक एक काव्य संकलन का प्रकाशन हुआ। हमारा संयुक्त संपादन था। इसकी खूब चर्चा हुई। मेरे बड़े सुपुत्र का नाम दीपक जी ने ही रखा था 'कीर्तिकाम'। जब प्रकाशन के नाम रखने की बात आयी तब उन्होंने इसी नाम से प्रकाशन को जाहिर करने की बात रखी थी। बहरहाल दीपक जी की रचनात्मकता मुझे प्रभावित कर रही थीं और प्रेरित भी।

बांग्लादेश के मुक्ति अभियान के ये दिन बहुत उत्तेजना से भरे हुए थे। हम रोज रेडियो से खबरें सुनते थे। दीपक जी का कवि-मन सक्रिय था। उन्होंने इस घटना पर कुछ कविताएं रचीं। इन्हें 'सूरज बनती किरण' के शीर्षक से पुस्तक रूप में कीर्तिकाम प्रकाशन से ही प्रकाशित किया गया। इन कविताओं की रचना प्रक्रिया का मैं साक्षी रहा हूं क्योंकि दीपक जी अपनी कविता को, उसके एक-एक शब्द को बहुत सजग होकर रचते हैं- उन्होंने मेरे जैसे नौसिखिया से भी अपनी कविता पर चर्चा की तो यह मेरे लिए खुशी की ही बात थी। वे मान रखना जानते हैं। रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर ने उन्हें पाठ्यक्रम में

सम्मिलित करने हेतु एक निबंध संकलन का प्रस्ताव भेजा। वे भूमिका में निबंधकारों के कृतित्व और व्यक्तित्व को लगभग एक-एक पैराग्राफ में ले रहे थे। ललित निबंधकारों की जब बारी आयी तो उन्होंने मुझे भी एक पैराग्राफ में उल्लिखित निबंधकार के रूप में प्रस्तुत किया। मेरे उस समय तक कुछ ही ललित निबंध प्रकाशित हुए थे- मैंने उन्हें इस हेतु रोका, लेकिन वे नहीं माने। बोले, 'संभावनाओं पर मेरी दृष्टि रहती है।' खैर। संकलन प्रकाशित हुआ। मुझे नयी उजास मिली। लोगों तक मेरा नाम पहुंचा, इसकी मुझे प्रसन्नता थी - किंतु मुझे अब दुनिया अधिक प्रीतिकर लगने लगी थी। यह जानकर कि दुनिया में ऐसे भी लोग अभी हैं, जो दूसरों का यश बढ़ाने में इस सीमा तक जा सकते हैं। मैं एक अदना-सा लेखक और उनका कनिष्ठ सहयोगी- सामान्यत: सीनियर्स की इस तरह की कृपा का पात्र बन जाए तो यह हुई न बड़ी बात। दीपक जी इसी तरह के वितान व्यक्तित्व हैं। ये कुछ स्मृतियां हैं- जिनसे विद्ध होकर मैं उज्जीवित हो लेता हूं। यह मेरा अहोभाग्य ही था कि मेरा प्रथम पदांकन अंबिकापुर में हुआ और मुझे संरक्षक के रूप में डॉ. देवेंद्र दीपक जैसे विरल जन मिले।

*- श्री चंडी वार्ड, हटा दमोह म.प्र. 570775*
*मोबाइल 9977421629*

**कविता**

## गांव से संबंध अपना

गांव से संबंध अपना, तोड़कर आना पड़ा,
पांव पर होने खड़े यों, दौड़कर आना पड़ा।

घर कवेलू का पुराना, पांच हम भाई-बहन,
देचकी की दाल मां की, राख चूल्हे की अगन,
रोटियां गरमागरम वे, ज्वार-मक्का की बनी,
एक था सबका बिछौना, और थे मीठे सपन,
भूलकर उस प्यार को, मुख मोड़कर आना पड़ा।

नीम पीपल, आम बरगद की घनेरी छांव थी,
कोकिला की कूक प्यारी, कागलों की कांव थी,
लौटती गायें घरों को, साथ में नवजात के,
चहकती हर द्वार चिड़िया, मंदिरों की ठांव थी,
शहर की नकली चमक को, ओढ़कर आना पड़ा।

लहलहाती फसल वाले, खेत औ'खलिहान तज,
ढोल पर गाते बजाते, थिरकते इनसान तज,
जिंदगी के नवरसों को व्यर्थ नीरस मानकर,
आ गया आखिर शहर में, गांव का सम्मान तज,
प्राण प्यारी उस हवा को, छोड़कर आना पड़ा।

बालपन की वह कहानी, स्वप्न जैसी हो गई,
याद में गलियां सभी संकरी-पुरानी खो गईं,
विवशताएं पेट की ये, समझ पाना है कठिन,
लोरियां वे नींद गहरी, अब सुहानी सो गईं,
सांस को दूषित शहर से, जोड़कर आना पड़ा।

**प्रभु त्रिवेदी**
प्रणम्य, 111, रामरहीम कॉलोनी, राऊ
इंदौर म.प्र. 453331 मो. 9425076996

स्मृति शेष...

# अनुपम अभयारण्य के अनन्य रचनाकार अभय जी

**डॉ. देवेंद्र शर्मा**

करीब ढाई दशकों तक मुझे उनका शीतल सान्निध्य मिला। नई प्रतिभाओं को पहचानकर उन्हें अवसर देने की उनकी विशेषता बेमिसाल रही। मुझमें उनका यह उत्कट विश्वास ही था कि पहले दिन से अखबार के पहले पेज पर कार्टून कॉलम 'पास के ढोल' के छपने का सिलसिला, ढाई दशकों तक निर्बाध चलता रहा।

चयन, मैं बेशक राजेंद्र माथुर जी का था, किंतु मुझे नियमित, व्यवस्थित और स्थापित होने की प्रक्रिया में अभय जी की पितृवत देखरेख का बड़ा योगदान रहा। तभी तो तरह तरह के 6-7 कार्टून रोज लिए व्यंग्य उमंग का इंद्रधनुष अखबार में खिलता खिलखिलाता रहा। प्रदेश में पहली बार कार्टून रचना और जन सराहना के कीर्तिमान बने। पहली बार प्रदेश के किसी अखबार में कार्टूनिस्ट की पूर्णकालिक नियुक्ति हुई। पहली बार सधी पत्रकारिता की बगिया में उत्साह और नव कल्पना से लबरेज व्यंग्य चित्रकारिता का उदय हुआ, जिसे प्रतिदिन ढेरों पत्रों के जरिए पाठकों का प्यार और प्रोत्साहन मिलता था। उन पत्रों पर आदरणीय अभय जी लाल पेन से श्री देवेंद्र लिखकर मेरी ओर भेज देते थे। उनका प्यार भरा यह प्रोत्साहन हमेशा ऊर्जा देता रहा।

अब सवाल उठता है कि पास के ढोल, मैडम मोहिनी, चरखा, उधेड़बुन, बमचिकबम, यहां वहां, अंतिम पत्र कार्टून, साथ ही व्यंग्य रचनाओं के कार्टूनों और बाल पुस्तिका, फिल्म पत्रिकाओं, खेल हलचल और दीपावली विशेषांक के चर्चित भाग्यफल कार्टूनों को अंजाम देने लायक भावभूमि के लिए आखिर दफ्तरी पृष्ठभूमि के वो कौन से तत्व थे, जो सर्वथा अनुकूल और सहायक थे। जवाब है, अभय जी की नईदुनिया का आदर्श पारिवारिक माहौल। वह कार्यस्थली, जो दफ्तर कम, एक परिवार ज्यादा थी। ऐसा परिवार, जिसमें एकता, श्रेष्ठता के लिए कड़ी मेहनत, निष्ठा, आपसी समझ और समर्पण के दुर्लभ दर्शन होते थे।

उल्लेखनीय है कि इस परिवार के मुखिया अभय जी स्वयं कर्मचारियों के बीच मौजूद रहकर न केवल अखबार की सामग्री व स्वरूप तराशते थे, वरन उसकी निर्बाध प्रिंटिंग भी सुनिश्चित करते थे। सरल स्वभाव और मेहनत से लक्ष्यपूर्ति के ये संस्कार उन्हें अपने बड़ों से मिले थे। कभी-कभी इत्मीनान के पलों में हम साथियों के बीच वे अखबार के शुरुआती दिनों की संघर्ष कथा जब भावुक होकर बयान करते, तो वक्त जैसे ठहर जाता था।

अभय जी के लिए न केवल दफ्तरी कर्मचारी बल्कि नईदुनिया के लिए सक्रिय हर बाशिंदा चाहे वह दूर गांव में रहता संवाददाता क्यों न हो ,सभी परिवार के सदस्य ही रहे। बृहद परिवार की अवधारणा पर टिके नईदुनिया के रोचक किस्से, नवभारत टाइम्स में मेरे कार्य के दौरान अक्सर संपादकीय साथी प्रबल जिज्ञासा के भाव से पूछा और सुना करते थे।

अभयजी में प्रेम, कोमलता, दृढ़ इच्छाशक्ति, सुदूर भविष्य दृष्टि, सुरुचिपूर्ण कलाबोध, नेतृत्व क्षमता और कुशल प्रबंधन के तत्वों का दुर्लभ मिश्रण था। उनकी मुस्कान सम्मोहक थी। और उनकी चुप्पी सचेतक का काम करती थी।

अभय छजलानी

जब वेबदुनिया शुरु हुई उन्होंने मुझे बुलाकर कहा- 'देवेंद्र! विनय जी तुम्हें चाह रहे हैं।' आगे उन्होंने जोड़ा- 'जाओ, बेशक वहां काम करो। मगर ध्यान रखना, नईदुनिया के काम पर असर न पड़े।'

और पिताश्री की स्थापित दुनिया और उत्साही नौजवान पुत्र के सपनों की सतरंगी दुनिया में एक साथ दायित्व निभाने के वे दिन आज मेरी मधुर यादों में शुमार हैं। शालीन, सधी रिपोर्टिंग और संतुलित कार्टूनिंग के गुर नईदुनिया नर्सरी से बेहतर और कहां मिलते?

एक बार राजेंद्र माथुर जी की स्वीकृति के बाद, तत्कालीन मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह जी पर तीखी चुटकी से भरा कार्टून बंदा बना रहा था। अभय जी ने यह देखा तो वे हाथ बांधे, वहीं मेरी मेज के पास टहलने लगे। बीच बीच में सरसरी नजर कार्टून पर भी डाल लेते थे। यह किस्सा लाइब्रेरी का है। मेरे ठीक सामने माथुर जी का कक्ष था, जो अभी-अभी किसी काम से बाहर गए थे। कार्टून जब काफी कुछ मुकम्मल हो गया, अभय जी ने उसे बरबस उठा लिया। और उसे देखकर समझाइश के स्वर में बोले- 'जरूरी नहीं, कि इसे इतना तीखा बनाया जाए...देख लो।' और वे सीढ़ियां उतर गए।

आक्रामकता को हांककर कभी-कभी सॉफ्ट मनोविनोद के पाले में ला, बांधना वैसे बुरा नहीं था। आखिर सत्ता से स्वस्थ मैत्री के चलते ही तो शहर को उपयोगी सौगातें मिली थीं।

अभय जी में मैंने एक फिक्रमंद पिता पाया था। मेरे सुख-दुख के कई पारिवारिक प्रसंगों में वे साथ खड़े नजर आए। सांत्वना और शाबाशी देते उनके हाथों का स्पर्श आज भी महसूस होता है।

नगर के सांस्कृतिक पल के तो वे अनिवार्य सितारे रहे। आयोजकों में, उन्हें अपने यहां सुशोभित कर, धन्य होने की, मानो प्रतियोगिता-सी छिड़ी होती थी। यह रोचक सत्य है कि उन्हें उत्सवमूर्ति कहा जाने लगा था।

याद आते हैं वे पल, जब वे अपने बड़े से टेबल पर अतिथियों से घिरे बैठे होते, या लॉन के नजदीक खड़े किसी ग्रुप से चर्चा कर रहे होते। ऐसे में जब भी मेरा वहां से निकलना होता, मैं उनके पास जाता और पार्ले पॉपिंस की मीठी गोलियों का पैकेट उनकी नजर करता। वे उन रंगबिरंगी गोलियों में से एक गोली निकालकर अपने मुंह मे रखते और फिर पैकेट अतिथियों की तरफ बढ़ा देते। आखिर में मुस्कुराते हुए वे मुझे पैकेट लौटा देते थे। सदा साथ रहने वाला मेरा बचपन जब उनके बचपन से मिलता, मौसम खुशनुमा हो जाता था। कभी कभी पैकेट लौटाने के बजाय वे मासूमियत से पूछते- 'क्या इसे पूरा रख लूं?'

मैं निहाल हो जाता। मगर आज बेहाल हूं।

आदरणीय अभय जी, वह पैकेट तो क्या, हम तो पूरे ही आपके थे। आपके हैं। आपके रहेंगे।

*- 276, प्रभाकुंज, क्लर्क कॉलोनी, इंदौर 452003 म.प्र.*
*मोबाइल : 9926794153*

# कविता व्याकरण पर अंत:करण का अनुशासन है

मुकेश निर्विकार

**आत्मकथ्य**

वैसे तो किसी कवि का सच्चा आत्मकथ्य स्वयं उसकी कविताएं ही होती हैं, किंतु फिर भी मेरे कुछ शब्द अपनी इन कविताओं और अपने पाठकों के बीच सेतु स्वरूप आना चाहते हैं।

मेरे लिए कविता शब्दों में संवेदन समेटने का एक पुनीत यज्ञ-कर्म है। यह अमूर्तन अहसासों को शब्दों की मूरत में ढालना है या निढाल होते हुए हृदय की ढाल बनना है। कविता में मैं अपनी कैद भी महसूस करता हूं और मुक्ति भी। इस तरह कविता मेरे लिए एक दमघोंटू और सुरक्षित मांद दोनों ही है। मेरे लिए कविता जिंदा रहने की एक मुकम्मल वजह है। मुझे लगता है कि कविता इंसान का सच्चा आत्मोत्सर्ग होती है। वह इंसान से उसका पूरा जीवन मांगती है, क्योंकि वह जीवन से असंपृक्त रूप से संपृक्त होती है।

मेरे लिए कविता जीवन का गहन शोधकर्म है। यह इंसान के जीवनानुभवों का गहन अनुसंधान है। यह अनुभूतियों की सूक्ष्म अनुपश्यना है। कविता से हमें जीवन-जगत को देखने की एक संवेदनशील दृष्टि मिलती है। यह जीवन का सुंदरतम भाष्य है। इसमें जाग्रत प्रतिरोध के साथ-साथ असीम जिजीविषा भी अंतर्निहित है। यह कवि के अंत:करण का निष्कलुष व निश्छल बयान है। स्वानुभूतिपरक बयान। यह, नि:संदेह, 'स्वांत: सुखाय' से शुरू होती है, लेकिन देश-काल की सीमाओं से परे सार्वजनीन अभिव्यक्ति बन जाती है। यह कवि की संवेदना का विस्तार है। यह आशा और उम्मीद का एक सशक्त दस्तावेज है। जिन कविताओं में कवि घोर निराशा को अभिव्यक्त कर रहा होता है, उनमें भी वस्तुत: वह आशा की ही किरन टोह रहा होता है तथा जिजीविषा शक्ति ही बटोर रहा होता है।

इस संसार में वस्तुत: हम सभी विभिन्न सृजन-कर्मों के माध्यम से स्वयं को ही भासित कर रहे होते हैं। कविता भी इंसान के भासित होने का श्रेष्ठ उपक्रम है। कविता में कवि की चेतना का अस्तित्व संरक्षित हो जाता है। एक प्रकार से कविता कवि की प्रबुद्ध चेतना की चिर-संग्राहक है। कविता आशा और उम्मीद का आह्वान है, आशाओं का आत्म-यज्ञ। कविकर्म से हमारी अंतश्चेतना आशाओं से आप्लावित होती है।

सभी का मानना है कि एक सच्ची और अच्छी कविता सप्रयास नहीं लिखी जाती है। वह स्वत: अवतरित होती है। वह अंतस् की उदात्त अभिव्यक्ति होती है, जिसका आत्मानुभूति की मंदी आंच पर सुदीर्घकाल तक सधैर्य परिपाक होना आवश्यक है। अच्छी कविता आत्मसंवरण, धैर्य व अनुभूतियों के सुदीर्घ परिपाक की बानगी होती है। कविता सदैव नैसर्गिक न्याय के पक्ष में खड़ी होती है। कविता स्वयं तथा ईश्वर के साथ सच्चा संवाद भी होती है। कविता व्याकरण पर अंत:करण का अनुशासन है। यह अंत:करण की भावनाओं, अहसासों अनूभूतियों का तीव्र संवेग है, जो अपने ढब में शब्दाभिव्यक्ति पाता है। यहां अनुभूतियों की शुद्धता के आगे वाक्य-संरचना अथवा

व्याकरण की शुद्धता गौण हो जाती है। आधुनिक कविता गद्य के अधिक निकट है। इसकी वजह कदाचित वर्तमान जीवन के बौद्धिक पक्ष का प्रबल हो जाना है। इसीलिए वर्तमान कविता छंदों से परे अतुकांत स्वरूप में अधिक मुखरित हो रही है। अतुकांत कविता कंठ की मधुरता, राग-छंद-गीत-संगीत से परे शब्दों का 'अलोना स्वाद' है, इसलिए कर्णराग से परे वह शब्दों की गहराई, मर्म, भाव, संवेदन समेटने में अधिक सक्षम सिद्ध हुई है। अतुकांत कविता का आस्वाद इसकी वैचारिक, बौद्धिक एवं अनुभूतिपरक अंतर्लय में सन्निहित है। अस्तु इसका सम्यक आस्वाद वैचारिक सौंदर्य की ग्राहयता से ही लिया जा सकता है तथा वैचारिक संलग्नता से ही हम इसकी अंत से जुड़ सकते हैं। कविता की अंतर्लय, जो कि कविता का मूल तल या प्राण है, वह भी मात्र शाब्दिक या मात्रिक न अपितु वैचारिक लय भी हो सकती है, भावनात्मक लय भी हो सकती है, वेदनात्मक लय भी हो सकती है, गहन अनुभूतिपरक लय भी हो सकती है।

वस्तुत: प्रत्येक रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से अपने पाठकों के साथ अपनी मनोदशा ही बांटता है वह स्वयं के चिंतन-मनन एवं जीवन-दर्शन को पाठकों के साथ विमर्शित करता है। इसलिए किसी रचना को पढ़ने का मतलब होता है पाठक की मनोदशा से गुजरना तथा उसकी अनुभूतियों के साथ सह-अनुभूति करना। जहां तक मेरे रचनाकार की मनोदशा का प्रश्न है, मुझे लगता है कि आजकल इंसान 'मुद्रालोक में जीने तथा दुनिया को मुद्रा के चश्मे से देखने और मुद्रा की धारा में जीने मरने या डूबने को अभिशात है। यह मृत्युलोक वस्तुत: अब 'मुद्रालोक' बन चुका है। मेरे रचनाकार ने अपनी कविताओं में मुद्रालोक की विभीषिका के वर्तमान दौर में संत्रस्त मनुष्य की विक्षिप्तप्राय: मनोदशा के साथ-साथ मुद्राविहीन मनुष्य की विकल्पहीनता, लाचारी और ईश्वर की शरण बनाम मुद्रा की शरण की प्रभावकारिता का अनुभूतिपरक विवेचन करने की कोशिश है। मौद्रिक वर्चस्व के इस दौर में, नि:संदेह, आज पुरानी मान्यताएं, आस्थाएं एवं प्रार्थनाएं निष्प्रभावी होती दिख रही हैं। पृथ्वी पर अधिकांश मानव मुद्रालोक के मुद्रारथियों के बीच खुद को सर्वथा असहाय पाते हैं तथा मौद्रिक वर्चस्व के वर्तमान दौर में मनुष्य मुद्रा को खरचने और बरतने की मशीन भर बनकर रह गया है। आजकल लगता है जैसे कि आधुनिक सभ्यता और कुछ नहीं, सिर्फ मुद्रा को खरचने और बरतने का सलीका मात्र है। इसी उपक्रम में हम सभी अपने-अपने हिस्से का जीवन नहीं जी पा रहे हैं और हमारा जीवन सर्वथा अनजीया रह जा रहा है। मुझे उम्मीद है कि 'मुद्रालोक में मानव' के जीवन-संत्रास को अभिव्यक्त करती हुई मेरी ये कविताएं कदाचित आप सबके जीवनानुभवों से साम्य बैठा पाने में सफल हो सके। इसी उम्मीद के साथ आपके समक्ष सविनय प्रस्तुत हैं ये कविताएं...

### अन-जीये जीवन को जीने के वास्ते

हम संसार में जिये कहां
संसार हमारे अंदर जिया
अपने पूरे भार के साथ
पृथ्वी भी खींचे रही हमें
अपने गुरुत्वाकर्षण की जद में।
हमारी दुनिया देह में
दुनिया भर के लोग जिये
अपनी-अपनी हरकतों से
हमें विस्थापित करते हुए।
बस एक हम स्वयं ही थे
जो नहीं जी सके
खुद अपनी ही देहों में
ताउम्र।
हम पर एक सिर्फ अपना ही वश नहीं था
बाकी सभी ने नियंत्रित किया हमें
अपनी-अपनी इच्छानुसार
हमारी देह के अंग-अंग को।

दिमाग बाजार की गिरफ्त में रहा
दिल धोखेबाज प्रेमिकाओं के संजाल में ठगा गया
पैर चले औरों के चलाये रास्ते
(हालांकि, मनोरम दृश्य पुकारते रहे हमें
बीच यात्रा में रूकने के लिए
मगर हम रुक न सके तनिक भी वहां
विश्राम करने या निहारने भर के लिए भी)
पेट को झेलनी पड़ी विज्ञापन की लोलुपता
रास्ते भर।
हमारे अपने शौक अनछुए ही रहे
हसरतों को टांग दिया हमने
भविष्य की खूंटियों पर
हमारा जीवन गोया पराया कोट था
उधार मांगा हुआ
जिसे सुरक्षित और साफ लौटाने के चक्कर में
टांग रहे हम सेफ कवर में
भविष्य की किसी तारीख के हैंगर पर।
पहन कर काट दी हमने जिंदगी
देह पर फटे कपड़े
खामोख्वाह टालते रहे हम
सुखद हसरतों को भविष्य के लिए
और जीते रहे नाहक
गैरों की हसरतें
उम्रभर!
कोई क्या इतना भी बेगाना हो सकता है
हमारी तरह
खुद की जिंदगी के प्रति
सोचकर गुनहगार पाते हैं हम
मरने की वेला में।
क्या एक ओर जीवन दे सकोगे प्रभो
अधूरी हसरतों को पूरा करने की खातिर
अन-जीये इसी जीवन को
फिर से जीने के वास्ते!

## मुद्रा एक भाषा है

मुद्रा एक चश्मा है
इससे भी देखी जाती है दुनिया

मुद्रा एक नपना है
इससे भी नापे जाते हैं संबंध

एक भाषा है
बोल रहा है जिसमें समूचा विश्व
इसी में भासित होगा हमारी सदी का जीवन

मुद्रा एक जिह्वा है
जिनके पास होगी यह, वह बोलेंगे फरार्टेदार
जिनके पास नहीं होगी मुद्रा
वह तुतलायेंगे, बोल नहीं पायेंगे

मुद्रा की क्लिष्ट लिपि में
ढलती जा रही है समूची दुनिया

मुद्रा के आईने में ही
दिख रखे हैं तमाम चेहरे

मैं कुरूप और दयनीय होता जा रहा हूं
निष्तेज भी
मुद्रा-दीप्ति के अभाव में।

## एक अन्तोहा युग

भला कैसे दे पाओगे मुझे
मेरे युग से विलग करके
कोई एक अन्तोहा युग
मेरे मन माफिक
इसी दुनिया से काटकर
जिसमें न बाजार हो
न प्रदूषण हो
न धोखा-फरेब हो, न गला काट प्रतियोगिता हो
जिसमें बस ईमान हो, सत्य हो, अहिंसा हो,
विश्रांति हो, सुकून हो,

न्याय हो, सदाचार हो।

हे ईश्वर!
मैं नाउम्मीद हूं

मुद्रा लोक में
मैं तुम्हारी अक्षमताएं जानता हूं।

## प्रेम से निष्प्रेम तक ?

गोया यह प्रेम करना नहीं था
बल्कि, बिना खरीदारी किए
चकाचौंध भरी रंगीनियां देखने के बाद
किसी शॉपिंग मॉल से बाहर निकलकर
वास्तविक दुनियां में वापसी करने जैसा था।

ऐसा ही कुछ हुआ मेरे साथ प्रेम में

मुझे सब कुछ विस्मृत करने को कह दिया गया
अतीत के रंगों को बेरंग करने के लिए कहा गया
उनकी नज़र में जैसे यह बेहद आसान काम था
पान-गुटखा मुंह में डालने या
चाय की चुस्कियां लेने जैसा आसान
और रोजमर्रा का काम।

अब उनको कौन समझाए कि
जिंदगी की दीवार पर खोदे गए भित्ति-चित्र
सहज नहीं मिटा करते
काटकर नहीं फेंका जाता
जीवन के पर्दे से कोई भी घटना-चित्र।

अफसोस! प्रेम में दिल का जो हिस्सा
सदैव के लिए मुझसे छीज गया
वह न उन्होंने कुबूल किया
और न ही मुझे वापस मिला

उन्हीं के डस्टबिन में
निरंतर खोज रहा हूं मैं!
उनके प्रेम से मुक्त होकर
निष्प्रेम होने के लिए!

## मुद्रालोक में नई सीख

(घनघोर मौद्रिक युग में एक अपील परिजनों से)

सुनो, गांव में नहीं,
कस्बे में भी नहीं
मेरी बात समझो
शहर में भी नहीं
दरअसल, अब तुम रह रहे हो बाजार में।

धरती पर यकीनन अब
हर जगह बाजार है-
घरों में भी, संबंधों में भी
जीने में भी, मरने में भी।

हम ईश्वर की बनाई दुनियां में नहीं
मुद्रा के बनाए बाजार में जी रहे हैं

सुनो, मैं चाहता हूं कि अब तुम भी सोचो
हां, सोचना शुरु करो मुद्रा में
बहाओ अपनी धमनियों में
मुद्रासिक्त लहू, धड़कनों में मौद्रिक खनक
मस्तिष्क में मौद्रिक चालें

अब तक
नैतिकता के जिन प्रतिमानों पर तुम
जीने का दंभ भरते रहे हो
वे कभी के खोटे हो गए हैं
मुद्रा के बाजार में!

*- प्लॉट नं. 28, पानी की टंकी के पास, कोतवाली देहात थाने के पीछे, विष्णुपुरम-द्वितीय, बुलंदशहर (उ.प्र.) 203002*
*मो. 9411806433/07400622722*
*ईमेल :* mukeshbul80@gmail.com

**कविता**

शताब्दी की ओर अग्रसर 'वीणा' के लिए
– सं.

**ओम ठाकुर**

## शेष शताब्दी के इंतजार में

हम भूखी पीढ़ी का संत्रास ओढ़कर
औपचारिक जीवन जीने को
जीवन की कलात्मक उपलब्धि
नहीं मानते हैं

हम विक्षिप्त या पागल भी नहीं हैं
न बहुरूपिया बनना हमारी मान्यता से
मेल ही खाता है / और
आप क्या हैं / हम खूब जानते हैं।

हमारे पास / वह / दर्पण है
जिसमें / सब कुछ
यथावत् दिखाई देता है/ आपकी तरह हम
जादुई दर्पण लेकर नहीं चलते कि जिसमें
वस्त्रधारण किए लोग नंगे दिखाई दें
और नंगे दृष्टि से ओझल हो जाएं।

निश्चय ही हम–
अधिक ठोस आधार की खोज में हैं
जो / भ्रांतियों से परे
निर्विवाद संभावनाओं का मंच बन सके।

ठूँठ की तरह खड़े रहने की
निरर्थकता से परिचित हैं
आकाश की भाँति झुकते हैं
और लो,
आश्वस्तभाव से सम्पन्न
शेष शताब्दी का स्वागत करने को उठते हैं।

## समय के वक्रमुख आइने में आदमी

कहाँ नहीं मैं
यूक्रेन, ताईवान, अफगान / या
जगह कोई।

क्या वहाँ आदमी नहीं बसता?

कोई माँ / बीवी कोई/ बच्चा या बूढ़ा
चीखता जब
चीख के मायने समझने की तमीज खो चुकी दुनिया में
अर्थ इंसानियत के– बेमानी कह देना
आसान तो नहीं।

कि भयाक्रांत इस समय में
पल–पल छीजता / वह
मैं / अकेला तो नहीं।

तमाम पाठशालाओं / पढ़ीं
पुस्तकों / ग्रंथों में लिखी
इबारतों के बीच
शोला आग का / आतुर
निगल जाने – करोड़ों–करोड़
वर्षों का अर्जित
और आदमी असहाय इतना / कि
रच दिया जाय पत्थरों पर
गोया अवशेष सभ्यता के।।

इंतहा नहीं क्या वक्त की
सोचता और देखता हूँ
समय के वक्रमुख आइने में
वीभत्स चेहरा खुद का।

## विपरीतताओं के बीच कविता

बहरे समय में
किसे दूँ आवाज।

सच और झूठ के बीच
मुसकराते मुखौटों में
कौन नहीं
शरीक ?

ऐसे में / भीड़ भरे - अबूझ
रास्तों से गुजरते
जर्जर किसी घर की मुंडेर पर
फूटती कोंपल देख
सराहता हूं मन ही मन
पर / दीवार को तो नहीं।

सूखी नदियों में नहा
भटकती हवाएं / छूतीं
मुझे ही तो नहीं / कि कहीं
किसी टिटहरी की चोंच में कैद
प्यास
खाई-खंदक से समन्दर तक
फैल-पसर / मौसम के खिलाफ
रचती सपने / और
मुँडेर पर फूटी कोपल की
उम्मीदों का आकाश
घेर लेता मुझे / बावजूद
उपस्थित समय के।

## देखने और पूछने के बीच ठहरा समय

सालों बाद लौट
अचंभित / पूछा मैंने
खुद से
कि / यहीं-कहीं पहाड़ था
नहीं क्या!

और चुप / देखता रहा
खुद को
गोया / पहचानने की कोशिश में
देखे कोई
आइने में / चेहरा
खुद का।
मेरे देखने / और
पूछने के बीच
ठहरा
समय
स्तब्ध घूर रहा था
मुझे / कि औचक
शब्द एक / जागा
भीतर मेरे
बोला -
एक झरना भी तो था।

*- 205, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा सेक्टर,*
*इंदौर 452009 (म.प्र.)*
*मोबाइल 9926064604*

कविता

**अशोक गीते**

## धरती के हाथों

धरती के हाथों
मेहंदी रचाने।
आये हैं बादल।

शिखरों से, झरनों की,
बहती है धार।
फूलों ने गंधों के,
खोले हैं द्वार।।

कजरारे मेघों ने,
आंजा है काजल।।

किसलय की खिड़की से,
कलियां भी झांके।
पुरवाई कानों में
कहती है आके।
मौसम ने बांध ली है,
बूंदों की पायल।
हरियाली साड़ी से
करके श्रृंगार।
मौसम के हर कांटे,
आये हैं द्वार।
सूरज भी मंद हुआ,
जैसे हो घायल।।

***संपर्क :*** *194, साई सदन, रामनगर, खंडवा 450001 म.प्र. मोबा. 9753334219, 9827323483*

## झरने मंत्र उकेरे

सतपुड़ा पर,
बादल उतरे...
धरती आंगन,
पावस आया।
मैदानों में,
आ गहराया।
करता बूंदों,
का व्यापार।
धरती का अब,
यौवन निखरे...
सौंधी-सौंधी,
गंध बिखेरे।
बादल धरती,
कर्ज उकेरे।
जागा यौवन
नदियां धार।।
पांख-पांख पर,
रंग है बिखरे...
बरस-बरस कर,
छन्द सुनाये।
धरती अंबर,
प्रेम जगाये।
नेह जगाती,
आज ऊहार।।
गिरता झरना
मंत्र उकेरे...

कविता

हरदान हर्ष

## सुरमई सांझ

न फूल आते हैं
न सजे संजरे पत्र
न कसमें न वादे
न हवाई सपने चांद-तारों के
न कोई गिला न शिकवा
अब हम बिंधे हुए मोती हैं
अपने कंठ हारों-के।
न कोई जोड़
न बाकी
न चटख रंग
न लिखत न पढ़त
एक पतवार में सवार
अब हम साथी हैं
अंधियारी रातों के।
उमड़ते-घुमड़ते
सरस मेघ बरसते
सहृदयी मीत
सुरमई सांझ
सधे स्वर बांसुरी के
खामोश सुन रहे
अब हम सागिर्द हैं
पुराने साजों के।

## बर्फ और आंच

मैंने देखा है
अबोले में
जमी बर्फ जैसी मुझ में है
वैसी ही जमी बर्फ
तुझ में भी है
मेरी तरह पिघलने को आतुर।
चाहता हूं मैं
अपने भीतर जमीं सारी बर्फ
जल्द से जल्द पिघल जाये
और द्रवित हो
सारी ठंडक दे जाये
अपने दग्ध जख्मों को।
धीरे-धीरे
पलच रही है आंच
मेरे अंदर
और तुम्हारे अंदर भी
कि अपनी सारी ऊष्मा ढल जाये
अपने साझे के अलाव में।

***संपर्क :*** *ए-306, महेश नगर, जयपुर 302015 राजस्थान*
*मोबाइल 9785807115*

कविता

**अरविंद यादव**

## कितना जरूरी है एक पिता होना

एक पिता बनकर समझ पाया हूं
पहाड़ की उस अंतहीन गुरुता को
महसूस रहा हूं उस अप्रत्याशित दबाव को
जिसे बिना उफ किए पिता
उठाए रहे ताउम्र अपने कंधों पर
ताकि उसका रंचमात्र भी दवाब
कुचल न दे कहीं/मुझे और मेरे अरमानों को।

एक पिता बनकर समझ पाया हूं कि
तय करते हुए जीवन का लंबा सफर
जब कभी बांहे फैलाए सुरंगों ने
जकड़ लिया पिता को /उस समय भी उन्होंने
मुझे नहीं होने दिया अहसास /उस अंधेरे का
चाहे उसके लिए उन्हें
भले ही लेनी पड़ी हो उधार
मुट्ठी भर रोशनी जगमगाती अट्टालिकाओं से।

एक पिता बनकर समझ पाया हूं
कि कैसे लाए होंगे पिता
खरीदकर बाजार से ढेर सारी खुशियां
सुलाकर अपनी अनंत इच्छाएं भविष्य की गोद में
कैसे लाए होंगे रंग बिरंगे खिलखिलाते फूल
छुड़ाकर खुद को उन कांटों की पकड़ से
जिन्होंने खींचा होगा उन्हें,अपनी ओर
किसी ने बांहे तो किसी ने कमर और पैर पकड़कर।

एक पिता बनकर समझ पाया हूं
कि जलता रहे आंगन का चूल्हा
शायद यही सोच/ कैसे निकल जाते थे पिता
पास के बगीचे की चिड़ियों को बिना बताए
मांगने को सूरज से थोड़ी आग
जिसके बदले सूरज उनकी पीठ पर सबार हो
करता था पूरब से पश्चिम की यात्रा

एक पिता बनकर समझ पाया हूं
कि कितना मुश्किल होता है
लड़खड़ाती इच्छाओं को उंगली पकड़ सम्हालना
कितना मुश्किल होता है/जवां होते सपनों को
उन्मुक्त अंबर में उड़ने को पंख देना
तब, जब निराला की यह पंक्ति
'धिक जीवन जो पाता आया ही विरोध'
हाथ पकड़ चलती रही हो उनके साथ सांसों के सोने तक।

एक पिता बनकर समझ पाया हूं
कि कैसे पिता सागर की तरह लुटाते रहे रत्न
सहकर मंथन की पीड़ा
कैसे बरगद की भांति फैलाए रहे अपनी छांव
सहकर स्वयं सर्दी, गर्मी और वर्षा
कैसे चट्टान की भांति खड़े रहे मेरे आगे
झेलने को जीवन के तमाम झंझावात।

एक पिता बनकर समझ पाया हूं
कि करने को पिता की सोच से संवाद
महसूसने को उनके हृदय में छुपे वह अनगिनत भाव
और उन भावों की हकीकत
कितना जरूरी है, एक पिता होना।

***संपर्क:*** *मोहनपुर, लरखौर जिला इटावा उ.प्र. 206130*
*मोबाइल 9410427215*

कविता

**अशोक 'आनन'**

## छंद रोशनी के

आंधियों के द्वार पर -
हमने
दीये जलाए हैं।

आशंकित नहीं जरा भी-
इनके जीवन को लेकर।
भुनसारे तक ये जलेंगे-
उजियारा जग को देकर।

कागजों के द्वार पर-
हमने
अलाव जलाए हैं।

आकंठ डूबे तम से हम-
निकल आएंगे एक दिन।
सूरज सहलाएगा तन-
धूप नहाएंगे हर दिन।

ओस-महल के द्वार पर-
हमने
सूर्य उगाए हैं।

युगों-युगों से दीपों ने-
छंद रोशनी के लिखे हैं।
अंधियारों के कारण ही-
उजालों में नहीं दिखे हैं।

पुतलियों के द्वार पर-
हमने
तिनके बसाए हैं।

अंतरंगता दीयों से-
सदा देहरियों की रही।
मुंडेरे भी देहरियों से-
कभी पीछे नहीं रही।

पांखियों के द्वार पर-
हमने
अंगार बिछाए हैं।

## दिन फिर गए

दीयों के
अब-
दिन फिर गए।

घर
उनको लेकर-
घर आए।
वे
देहरी-द्वारों के-
मन भाए।

मांडनों के
अब-
दिन फिर गए।

दीयों से
बातियां-
फिर बतियाईं।

बातों-
बातों में-
व्यथा सुनाई।

रुइयों के
अब-
दिन फिर गए।

बंदनवारों से
द्वार-
सजे हैं।
उन पर
सांतिए-कलश -
मंडे हैं ।

शुभ-लाभ के
अब-
दिन फिर गए।

दीयों ने
तम की -
नींव हिलाई!
उसको
उसकी -
औकात दिखाई।

झोपड़ के
अब -
दिन फिर गए।

***संपर्क :*** 11/82, जूना बाजार, मक्सी जिला-शाजापुर (म.प्र.)465106
मो. 9977644232 ईमेल : ashokananmaksi@gmail.com

कविता

**अमेय कांत**

## रिलेटिविटी

दूरबीनें खोज लाई हैं
कुछ अब तक अनदेखे दृश्य
आकाशगंगाएं संख्यातीत
जो दूर हैं जाने कितनी
टिमटिमा रही हैं /तारों की तरह।

जिन्हें देख मंत्रमुग्ध हैं हम
ये कुछ तस्वीरें हैं
एक अनिर्वचनीय अतीत की।

इनमें कोई पहाड़ है
जिसकी ऊंचाई है
कई प्रकाश वर्षों जितनी
जिसकी ओट में जन्म ले रहे हैं
निरंतर नए तारे।

इनमें कोई तारा है
जिसकी मृत्यु है इतनी लंबी
कि खप जाएं कई पृथ्वियों की उम्र

ब्रह्मांड कह रहा है एक बार फिर,
'फैलाओ हाथ /खंगालो मुझे
नापो मेरे भीतर
गहराइयों-ऊंचाइयों को
और ढूंढ पाओ तो ढूढों मुझमें
समय को /जो खुद नहीं ढूंढ पाया
अब तक /अपने लिए
कोई ठीक-ठाक सा आधार!'

## हमारे बाद

शायद हम भी दिखाई पड़ें /एक दिन
किसी सुदूर आकाशगंगा से
और हतप्रभ हो जाएं सभ्यताएं
एक और जीवनमय
पिंड को देखकर।

खिल उठें उनके चेहरे
कि अकेले नहीं वे
इस अनंत में।

कि कहीं-न-कहीं
कोई और भी है
उन्हीं के जैसा।

इस तरह शायद
बचे रह जाएं हम
हमें हमारे बाद देख रही
आंखों में कौंधी चमक के भीतर

## महानगर

सपनों का एक कुहासा
फैला है चारों तरफ

गांवों-कस्बों से लाकर
इमारतों के दसवें-बारहवें मालों पर
रोपे जा चुके उम्रदराज पेड़
पथरीली जमीन पर ढूंढ रहे हैं
अपनी जड़ों के लिए जगह।

बूढ़ी आंखें बढ़े हुए
नंबर के चश्मे से देखती हैं
एक चमकदार दुनिया की चकाचौंध।

उनकी अपनी दुनिया
सबसे ऊंची इमारत पर चढ़कर भी
अब दिखाई नहीं देती।

## सुरंगें

समय बीतने के साथ
पीछे छूटती रहतीं हैं कई चीजें
पुरानी जगहें /पुराने लोग
और तमाम तरह के अनुभव।

फिर अचानक किसी दिन
कोई गंध/कोई स्वाद
या कोई धुन
खींच ले जाते हैं हमें
और छोड़ देते हैं ले जाकर
बहुत पीछे छूट चुके उन्हीं क्षणों में।

क्या हमारे बीच कुछ सुरंगें हैं
अदृश्य-सी
जिनके एक सिरे पर
बैठे होते हैं ये गंध, स्वाद या धुनें
और दूसरे सिरे पर /वे चीजें
जो छूट गईं थीं किसी धुंध में
बहुत पीछे।

*संपर्क : 155, एलआईजी, मुखर्जी नगर, देवास (म.प्र.) 455001 मो. 9827785868*

## इतिहास में ताक-झांक : मिर्जा गालिब की जासूसी

Murder at the Mushaira रजा मीर का उपन्यास है, जो 1857 की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। उपन्यास का आरंभ 02 मई 1857 को होता है और लगभग 10 मई को अनौपचारिक रूप से समाप्त होता है। बाद में दो छोटे-छोटे अध्याय 21 सितंबर और 14 फरवरी के नाम हैं। यह उपन्यास कई अर्थों में अद्‌भुत है। इसके कई पात्र ऐतिहासिक हैं, पर उनका औपन्यासिक व्यक्तित्व काल्पनिक है- पूरी तरह से लेखक के कथा-विस्तार का अन्वेषण है और चमत्कारिक है। मिर्जा गालिब, उमरान बेगम, मास्टर रामचंद्र, जकाउल्ला खान, मोहनलाल जुत्सी, थियोफिलिस मेटकॉफ, साइमन फ्रेजर, एडवर्ड विबर्ट ऐसे पात्र हैं। शेष पात्र कथा की आवश्यकतानुसार सिरजे गए हैं। उपन्यास की कथा काल्पनिक है। उपन्यास के दो पात्र मास्टर रामचंद्र और मुंशी जकाउल्ला खान ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। ये दोनों देहली कॉलेज से संबद्ध थे और वहां के शैक्षणिक पुनर्जागरण के अग्रदूत थे। उपन्यास में मानवीय सांवेदनिक प्रवृत्तियों यथा उत्सुकता, जिज्ञासा, आश्चर्य, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या नवाबी अकड़ और दयनीयता के प्रसंगानुकूल आनुपातिक अभिव्यक्ति ने इसे रोचक बनाया है।

प्रारंभ में एक मुशायरे के पश्चात सुखन खैराबादी नामक एक शायर की हत्या हो जाती है। इस खून की गुत्थी सुलझाने की जिम्मेदारी मिर्जा गालिब पर है, जो मास्टर रामचंद्र और जकाउल्ला की सहायता से इसे अंजाम देते हैं। उपन्यास में अंग्रेजों का दबदबा और खौफ-जो उस समय था- साफ-साफ महसूस किया जा सकता है। पात्रों के मध्य पारस्पररिक संवाद घटनाक्रम के अनुसार सामंजस्यता लिए हुए है और पूरी तरह से काल्पनिक है। लेखक ने उदात्त दांपतिक संवेदना और पारस्परिकता के जिस गरिमामय बोध के साथ मिर्जा और उमराव बेगम के बीच संबंधों को दर्शाया है- उसमें विश्वास की जो अनुभूति है, वह पाठक को अभिभूत कर देती है।

उपन्यास में एक जगह मास्टर रामचंद्र कहते हैं, Time is a strange dimension. It yields different results depending on the horizons we choose.

उपन्यास में समय की विभिन्न छवियां हैं, जो देश, काल, स्थान और व्यक्तियों की प्रासंगिकता को सार्थकता देती है।

मिर्जा गालिब के शैदाई पाठकों को, मिर्जा अपने इस जासूसी अवतार में निश्चित ही प्रभावित करेंगे। गदर की लंबी होती हुई छाया में लिखा गया यह उपन्यास एक लंबे समय तक पाठकों को याद रहेगा।

1. एक शहर देवास, कवि नईम और मैं, प्रकाशकांत, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, संपर्क 9871856053
2. गांधी गुटका, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, 7-ए, झालना संस्थान क्षेत्र, जयपुर 302004
3. बनी-ठनी- प्रेमकथा से चित्रकला तक, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, वृंदावन 281121 संपर्क 9219858901
4. Murder at the Mushaira, Raza Mir, Aleph Book Company, 7/16, Ansari Road, Dariyaganj, New Delhi 110002

- **महेश दुबे,** आर-36, महालक्ष्मी नगर, बांबे हॉस्पिटल के पास, इंदौर 452010 (म.प्र.) मो. 9827459970

पुस्तक चर्चा

# दिये की तरह एक उम्मीद

डॉ. शशि कला पांडेय

प्रख्यात कलाविद्, सहृदय कवयित्री, संस्कृति एवं कला पर अनेक पुस्तकों, लेखों, शोध-पत्रों एवं कला समीक्षाओं की लेखिका। नार्वे, जर्मनी, आस्ट्रिया, पोलैण्ड, इंग्लैंड आदि अनेक यूरोपीय देशों में अपनी चित्रकला के लिए ख्यातिप्राप्त, अनेक सम्मानों और पुरस्कारों से पुरस्कृत, चित्रकला के साथ-साथ काव्य कला में भी अपनी पहचान रखने वाली मंजुला चतुर्वेदी का 'एक उम्मीद है दिये की तरह' नामक तीसरा काव्य-संग्रह अभी शीघ्र ही प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत संग्रह आज के आक्रोश, आलोचना-प्रत्यालोचना, आक्रामकता, नकारात्मकता और अहंवादी युग में स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श जैसे वादों से अलग हट कर प्रेम, सहिष्णुता, दया, करुणा, सकारात्मकता, निर्वेद, आशावादिता के साथ 'सर्वेभवन्तु सुखिनः, सर्वे संतुनिरामया' के भाव से परिपूर्ण बासठ कविताओं का संग्रह है। ये कविताएं तीन खंडों के अंतर्गत संग्रहीत हैं 'लहरों में विन्यस्त', 'मन के रूपाकार' और 'कोरोना समय'।

'लहरों में विन्यस्त' खंड की कविताओं में कवयित्री के हृदय में उठने वाली भाव-तरंगों का विन्यास दर्शनीय है। वे इस धरती से कुछ रंग और गंध चुनकर अनंत आकाश में फैलाना चाहती हैं- 'तुम देखना उसे / बादलों के पास से / आर्द्रता लिए / चुन लेना कुछ रंग और गंध / फैला देना अनन्त अंतरिक्ष में / कि सार्थक होगा जीवन / तुम्हार और सबका।' - धरती मांग रही है।

कुंठा-संत्रास, औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, सूचनाक्रांति और आपाधापी के इस युग में मंजुला जी चैन के राग का एक कोना ढूंढती हैं। कुछ वर्षों पहले उनकी रचना 'एक कोना राग का' आई थी। युग की तमाम कठिनाइयों, दिये की तरह एक उम्मीद के कोरोना जैसी महामारी की मार, रूस-यूक्रेन के युद्ध के बीच भी उन्होंने उम्मीद का एक दीपक जला रखा है। उनका विश्वास है कि समय बदल जायेगा- 'सुनो यायावर! / वक्त बदल जायेगा / कल सूरज मेरा होगा / और चांद तेरा / धरती मेरी होगी / तेरा पूरा आसमान / ×××अनवरत धड़कनों के साथ / मिलन की उत्कंठा लिए / वक्त कल बदल जायेगा।' -सुनो यायावर।

मंजुला जी प्रेम और सहिष्णुता की कवयित्री हैं। उनकी कविता में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आक्रामकता जैसे भाव कम ही मिलते हैं। वे उदारता और क्षमाशीलता को अपना मूल मंत्र और लक्ष्य मानती है तभी तो वह कहती हैं- 'हम बदला कैसे लें / हम प्रेम के आंसू हैं / यह रीति हमारी नहीं।' -आंसूनामा।

वह कबीर की भांति प्रेम की झीनी चादर बुनना चाहती हैं- 'बुनना चाहते हैं / एक चादर प्रेम की / जैसे बुनी थी कबीर ने /एक झीनी चदरिया।' -एक चादर प्रेम की।

कबीर लुकाठी लेकर बाजार में खड़े हो जाते हैं। उन्होंने अपना घर तो जला ही दिया है और जो उनके साथ चलना चाहता है उसको भी पहले अपना घर जलाने को प्रेरित करते हैं, किंतु मंजुला जी न अपना घर जलाती हैं और न किसी और का घर जलाना चाहती हैं। वह तो नेह के आवर्तन में एक नई परिभाषा रचना चाहती हैं- 'नेह के आवर्तन में/समय रच रहा है/एक नव परिभाषा/ समय के आंतरिक आकाश में।' -नेह के आवर्तन में।

प्रेम उनका प्रिय विषय है, अभीप्सित भी है। वह छोटे से जीवन को मान करने या विषाद में बरबाद नहीं करना चाहतीं, क्योंकि कल हमारे हाथ में नहीं है- 'मानिनी उठो, बैठो/ और मुस्कुराओ/यह प्रेम समय है/आगे-पीछे की कहासुनी/बाद में कर लेना/ × × × वर्तमान को अपना बनाओ/कल तुम्हारे हाथों में नहीं।' - प्रेम समय।

किंतु कवयित्री केवल प्रेम में पागल नहीं है। वह इस मायावी दुनिया को खूब अच्छी तरह समझती है और जानती है कि- 'मायावी दुनिया में सबको / सब कुछ नहीं मिला करता।' -रोजनामचा।

इसीलिए कवयित्री ने सन्नाटे में जीना सीख लिया है- 'मुझको ऐसे सन्नाटे में / सीढ़ी पर चढ़ना आता है। जीवन को जीना आता है।' -रोजनामचा।

उदासी भी जीवन का एक अहम पहलू है। जहां प्रेम है वहां विरह भी होगा, जहां खुशी है वहां गम और जहां उमंग है वहां उदासी भी होगी ही। बिना विरह के प्रेम की तीव्रता, गम के बिना खुशी का आनंद और उदासी के बिना उमंग का एहसास नहीं किया जा सकता। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, इसीलिए इस संग्रह में प्रेम के साथ उदासी की भी कविताएं संग्रहीत हैं। इस उदासी का विस्तार पेड़ों, पहाड़ों और प्रकृति के क्षरण, जीव-जंतुओं के ह्रास, पर्यावरणीय प्रदूषण से उत्पन्न उदासी है। इस उदासी का कारण संपूर्ण जगत में व्याप्त दुख, दर्द और पीड़ा है- 'आज मन उदास है/और उदास पूरी कायनात/सूरज कहीं दूर है/चांद भी नहीं पास/डूब गये तारे भी धुंध में/ × × × दूर हो रही हरियाली/खो रहे रास्ते औ घर/बिखर रहे नाते-रिश्ते/बनते अंतराल संबंधों के/ × × × पहाड़ अनावृत्त हो रहे/झर रहे द्रुतगति से पर्ण/देख कर ये रिक्ति/उदास है मन आज।' - पहाड़ों पर धुंध।

प्रस्तुत संग्रह में मंजुला जी की कविता पर भी अनेक कविताएं संकलित हैं 'कविता का जन्म', 'कविता', 'लिखने और मिटाने के बीच'। कविता मंजुला जी को 'जन्म लेता एक नन्हा खिलौने-सा बालक' लगता है जिसकी प्रसव पीड़ा को वह बड़ी शिद्दत से महसूस करती है- 'कविता के जन्म की पीड़ा/किसी प्रसव से कम नहीं/जीना पड़ता है दर्द।' - कविता का जन्म।

फिर भी उन्हें इसकी प्रतीक्षा रहती है- 'मैं करती हूं प्रतीक्षा / कविता के आने की / दिन-रात।'-कविता।

मंजुला जी ने माँ और पिता के प्रति अपने उद्‌गार कई कविताओं में व्यक्त किये हैं। माँ के माध्यम से वह स्त्री मन चरम आकांक्षा 'मातृत्व' को 'गर्भ का मोती' नामक कविता में व्यक्त करती हुए कहती हैं। माँ केवल सृजन की ही नहीं परंपरा की भी प्रतीक है जो बेटी और बेटी की बेटी के रूप में आगे बढ़ती है, 'माँ जो धड़क रही थी/ अपनी माँ के गर्भ में/धड़क रही थी तीन पीढ़ियां/ एक लय में एक साथ/जीवन सृजन हेतु। × × × मानों गुड़िया में गुड़िया/फिर गुड़िया में गुड़िया/सहेजी जा रही परम्पराएं / सौंपा जा रहा मातृत्व।' -माता के तीन मनके

संस्कृति और परंपरा की पथर मंजुला जी विभिन्न संस्कारों और रीति-रिवाजों को भी अपनी कविता में पूरा-पूरा स्थान देती हैं, 'अनुष्ठान के समय/प्रवेश करती है घर में प्रज्ज्वलित दीप लेकर/घर का वरिष्ठ/दीप लेता है उसके हाथ से/और देता है, कोई उपहार/यह रस्म है दिया उतराई की/कुल दीपक के उजास की।'- गर्भवती-1

इसी प्रकार एक अन्य कविता में, 'वह ओढ़ती है एक श्वेत वस्त्र/जिसे कहते हैं कंबिया/चित्रित है उस पर/ सूरज, चांद, तारे, मातृकाएं, गंगा-यमुना/पेड़-पौधे और

लताएं/ पहनकर ऐसा वस्त्र/ साक्षी बनाती है वह / पूरी कायनात को।' –गर्भवती–2

मंजुला जी कवयित्री से पहले एक कलाकार और चित्रकार है। उन्होंने देश–काल, समाज, प्रकृति और मानव मन की अनेक संवेदनाओं को अपनी तुलिका के विभिन्न रंगों से रूपाकार प्रदान किया है जिन्हें अब वे शब्दों के माध्यम से उकेर रही हैं। संग्रह के दूसरे खंड 'मन के रूपाकार' के अंतर्गत चयनित आठ कविताएं उसी श्रेष्ठ कलाकार की सुंदर प्रस्तुति है। दो कविताओं 'कलाकार रामकुमार के चित्र' और 'साबावाला के चित्रों को देखते हुए' में अन्य प्रसिद्ध कलाकारों के चित्रों को देखकर मन में उठने वाले भावी की प्रस्तुति है।

कवयित्री मंजुला जी की रामकुमार जी के चित्र नाटक के चरित्रों से व्यथा–कथा बहते प्रतीत होते है किंतु उनके चित्रों में नारंगी रंग का प्रयोग व्यथा–कथा से मुक्ति दिलाता है। वस्तुत: लाल रंग और उसके विभिन्न शेड्स उत्साह, अनुराग और उमंग के प्रतीक है। लाल और पीले के संयोग से बने नारंगी रंग में तो अनुराग और उमंग के साथ सौम्यता (पीला) का भी मिश्रण हो जाता है। अत: व्यथा और उदासी की चादर को वह उतार फेंकता है।

साबावाला के चित्र प्रकृति के विराट में स्वयं को दुबीने वाले हैं जो मन को उदास बनाते हैं और शांति को ढूंढता मन अनंत आकाश में उड़ने लगता है– 'डुबो देता है स्वयं को/ प्रकृति के विराट में / उदास मन लिए।' –साबावाल को देखते हुए।

प्रस्तुत अंश की कई कविताएं विभिन्न रंगों के प्रति कवयित्री के मन में रंगों के प्रति उठते रूपाकारों को व्यक्त करती हैं। विशेष रूप से प्रेम और अनुराग का प्रतीक लाल रंग उनकी अनेक कविताओं में छाया है– 'अब लाल मेरे मन में/तन में, डूबी हूं पूरी/लाल में/ लाल हुई मैं/अब लय में गा रही/मैं भी हो गई लाल।' –लाल रंग और मैं।

लाल रंग की सर्वव्यापकता को स्वीकारते हुए कवयित्री कहती हैं– 'कहता है मैं सर्वव्यापी/आसमान से धरती/और जल बीच धड़कता रहा हूं/ रक्त बनकर / सबके दिल में।' –विवृति।

रंगों के बहाने उन्होंने कला के अनेक 'वादों' की चर्चा भी अपनी कविता में की है। चित्रकला के माध्यम से स्त्री–विमर्श और भ्रूणहत्या जैसे ज्वलंत मसलों को भी उन्होंने उठाया है।

संग्रह का तीसरा अंश 'कोरोना समय' नाम से संग्रहीत है। कोरोना के भयावह समय ने आम आदमी को अंदर तक झकझोर कर रख दिया था। फिर एक सहृदय कवि चित्त उस त्रासदी से प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता है? मंजुला जी ने उस त्रासद समय की 'दीवारों में कैद/मर–मर के जीने की' व्यथा–कथा 'कोरोना समय' शीर्षक की सात कविताओं में व्यक्त की हैं। मंजुला जी की विशेषता है कि वह हार नहीं मानती– 'फिर भी सूर्यास्त के पूर्व/छत पर जाकर वह/ समेटना चाहती है/आसमान से श्वेत रंग / जीने के लिए।' –कोरोना समय–4

इस संग्रह की बहुत ही प्यारी–सी कविता है 'जमुन जल में छपछप'। इसको पढ़ते समय मन बचपन की उन गलियों में विचरण करने लगता है जब व्यक्ति निर्द्वंद्व होकर अपनी मनमर्जी का काम कर लेता था और कुछ समय के लिए वह भूल जाता है कि अब वह बड़ा हो गया है– 'भूल जाती हूं बार–बार/कि मैं बड़ी हो गई / जमुन जल में छपछप/करना चाहती हूं स्नान/नये कपड़े पहन कर / मनाऊं त्यौहार/होली, दीवाली, दशहरा/किंतु मैं भूल जाती हूं बार–बार/कि मैं बड़ी हो गई।' –जमुन जल में छपछप।

इसी प्रकार एक कविता है 'वारिस'। अप्रवासी मानसिकता का सुंदर चित्रण है इस कविता में। यद्यपि वर्तमान पीढ़ी जो अभी–अभी परदेश में गयी है, अपने तीज–त्यौहार, संस्कृति–सभ्यता संस्कार को संभालने

के लिए चिंतित है। किंतु कब तक? दो-चार पीढ़ियों के बाद तो पितरों के नाम भी खो जायेंगे- 'विस्मृत है अब/पाठ सब/देश प्रेम के/कि बस गये विदेश/वारिस पिता के / × × × जानती वह कि सांझ गहराते ही / खो जायेंगे पितरों के नाम/ ××× न कोई तर्पण न श्राद्ध/ संभव है शेष रहे वे/वंश वृक्षों में/एक परिचयात्मक एहसास के साथ। × × × सभ्यता की होड़ में/ ऐसा होगा यहां/पीढ़ी-दर-पीढ़ी/पलायन के साथ/विस्थापन के साथ।' - वारिस।

संग्रह की सभी कविताएं अपने कलेवर में छोटी हैं, भाषा अत्यंत सरल और सहज है। मीरा और महादेवी वर्मा की भांति मंजुला जी का हृदय प्रेम की पीड़ा से परिपूर्ण है। उनके प्रेम का विस्तार धरती, आकाश, अनंत, विराट के साथ-साथ अपने आस-पास के प्रकृति-परिवेश, चिरई-चुनमुन, हवा-पानी, धरती-बादल, व्यक्ति-समष्टि, जीव-जंतु, स्त्री-पुरुष, माता-पिता, संस्कृति, संस्कार, परंपरा, देश और समाज से जुड़े हर ऐसे पक्ष जिनका क्षरण हो रहा है और जिन्हें आज सहेजने की आवश्यकता है। उन सभी जगहों पर महसूस किया जा सकता है। उनकी चिंता में इन सभी का योगक्षेम छुपा हुआ है। उनके हिमालय के लैंडस्केप के चित्रों की भांति ही उनकी कविताएं भी मन को शांति और शीतलता प्रदान करती हैं, वर्तमान युग की तमाम कमियों के बीच आशा का संचार करती हैं। इसीलिए इस संग्रह का नाम 'एक उम्मीद है दिये की तरह' सर्वथा उपयुक्त है। मंगल कामनाओं के साथ मैं भी उम्मीद करती हूं कि एक दिन मंजुला जी काव्य जगत् की ऊंचाइयों को प्राप्त करेंगी।

*-सी-32/29 बी-7, पंड्या रतनबाग चंदुआ छित्तुपुर, वाराणसी 221002 (उ.प्र.), मो. 09450872661*
*ईमेल dr.shashikalapandey22@gmail.com*

---

**कविता**

# हार-जीत का प्रश्न नहीं है

**- सुरेश कुशवाहा 'तन्मय'**

कौन गलत है कौन सही है
हार-जीत का प्रश्न नहीं है।
आप सतत निगरानी में हैं
उसकी सत्य कहानी में हैं
आकर्षक इस रंगमंच पर
शक्ल नई अनजानी में हैं,
सोचा! कभी स्वयं की कब
परछाई खुद से अलग रही है
हार-जीत का प्रश्न नहीं है।
खुद होकर कोई कब बोले
भेद न कोई अपने खोले
समय, तराजू लिए खड़ा है
सांच-झूठ पल-पल का तोले,
सबकी करतूतों के अपने
अपने खाते और बही हैं
हार-जीत का प्रश्न नहीं है।
खुश है मन तो कभी विकल है
मछली की भांति चंचल है
मृग मरीचिकाओं से मोहित
चलती रहे सदा हलचल है,
जीवन के सच से अबोध
ये राग-द्वेष सुख-दुख सतही है
हार-जीत का प्रश्न नहीं है
कौन गलत है, कौन सही है।

*- बी-101, महानंदा ब्लॉक, विराशा हाइट्स, कोलार रोड़, भोपाल म.प्र. 462042 मोबाइल 9893266014*

**पुस्तक-समीक्षा**

## सकारात्मक सोच की यथार्थपरक लघुकथाएं

पुस्तक : **श्वेत सतह** (लघुकथा-संग्रह)
लेखिका : **रश्मि चैधरी**
प्रकाशन : बोधि प्रकाशन, जयपुर
मूल्य : 200 रुपये

'श्वेत सतह' रश्मि चैधरी का प्रथम लघुकथा संग्रह हैं। इसमें उनकी छहत्तर लघुकथाएं शामिल हैं। लघुकथाओं से गुजरते हुए लेखिका की दृष्टि-संपन्नता और संवेदनशीलता के प्रति कोई संदेह नहीं रह जाता। समाज की विरोधाभासी स्थितियों के प्रति अपने असंतोष को व्यक्त करने की बेचैनी वहां देखी जा सकती हैं। संग्रह की अधिकांश कथाएं सकारात्मक सोच से जुड़ी हैं। सकारात्मकता से जीवन में आशा, उत्साह और उमंग का संचार होता है। कुछ बेहतर करने की प्रेरणा मिलती है। साहित्य का उद्देश्य भी लोक-मंगल है। इस दृष्टि से रश्मि जी ने अपने लेखकीय दायित्व को निभाया है? पहली कहानी 'नई शुरुआत' असफलता से निराश न होकर भविष्य में कुछ अच्छा करने की प्रेरणा देती है। यदि मनुष्य निराश हो हाथ पर हाथ धरे बैठा रहेगा तो जीवन में आगे कुछ नहीं कर पाएगा। असफलता को एक चुनौती के रूप में लेना चाहिए। 'अनोखा रिश्ता' और 'चैन की नींद' रचनाएं भी इसी भाव-दिशा की लघुकथाएं हैं। आज भी समाज में भले, ईमानदार लोग मौजूद है जो जरूरतमंदों की मदद के लिए तैयार रहते हैं-विश्वास की जोत को जलाए रखते हैं (चैन की नींद)।

आधुनिकता और बाजारवाद पर तंज कसती अन्य महत्वपूर्ण रचना है 'देश की माटी' इसमें बताया गया है कि कैसे देशी चीजों को विदेशी अंदाज में बेची जाता है। कुटीर और गृहउद्योग की सामान्य वस्तुओं को महानगरों के महामेलों और एक्सपो में अत्यंत महंगे दामों पर बेचा जाता है, इसका सटीक चित्रण हुआ है।

आज भी ऐसे सहृदय और उदारदिल लोग है जो निस्वार्थ भाव से दूसरों की मदद के लिए तत्पर रहते हैं। एक व्यक्ति अपने घर की कबाड़ वस्तुएं, अखबार आदि कबाड़ी को बिना दाम चुकाए ले जाने के लिए सहर्ष कहता है, जबकि ऐसे लोग भी हैं जो पचास रुपए की रद्दी के पैसे वसूलने के पहले जमकर मोल भाव करते हैं।

दाम से दुआएं अधिक कारगर हैं। पैसा-कौड़ी ही सब कुछ नहीं है (दुआएं)। सरकारी योजनाओं का बेजा लाभ उठाने वालों की कथा है 'मुफ्तखोरी'। माफी मांग लेना जितनी अच्छी बात है, माफ कर देना भी उतनी ही अच्छी बात है? इस दर्शन को बेबाकी से बयां किया है लघुकथा 'माफी में'!

संग्रह की नाम धर्मा कथा 'श्वेत सतह' दोस्ती, प्रेम और विवाह के जटिल संबंधों पर शिद्दत से रोशनी डालती है। रचना विशुद्ध दोस्ती और प्रेम और विवाह के बीच एक रेखा खींचती नजर आती है। वैसे अक्सर देखा यह गया है कि जहां स्त्री-पुरुष साथ होते है, मित्रता में शनैः शनैः प्रेम की कोपले फूटने लगती है जो अंततः विवाह में परिणत हो जाती है। प्रस्तुत रचना स्त्री-पुरुष के मैत्रीभाव को विश्लेषित करती है।

शब्द सीमित हैं, पर कथाओं में चिंतन असीमित है। कृति साहित्यिक और सामाजिक दोनों स्तर पर खरी उतरती है।

▸ *समीक्षक : **सूर्यकांत नागर**, 81, बैराठी कॉलोनी नं. 2, इंदौर-452014 (म.प्र.) मो. 9893810050*

## प्रेम और देह की अधिष्ठात्री स्त्री

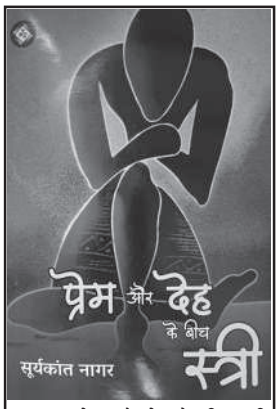


पुस्तक : **प्रेम और देह के बीच स्त्री**
लेखक : **सूर्यकांत नागर**
प्रकाशक : अमन प्रकाशन, रामबाग, कानपुर
मूल्य : 275 रुपये

ज्वलंत प्रश्नों, चिंताओं और वैचारिक मंथन से उपजे आलेखों को संगृहीत करती नवीन कृति है 'प्रेम और देह के बीच स्त्री' और इसके लेखक हैं अध्येता, सम्माननीय वरिष्ठ कथाकार सूर्यकांत नागर। श्रद्धेय नागर जी विगत दिनों जीवन के नौ दशक पूर्ण कर चुके हैं। उनके पास साहित्यिक पत्रकारिता, संपादन, लघुकथा, कहानी और उपन्यास लेखन का सुदीर्घ अनुभव है। दो दर्जन से अधिक पुस्तकें उनके नाम अंकित हैं। सामाजिक विसंगतियों, दुराचार और स्त्री शोषण के विरूद्ध वे अपने वक्तव्यों में सदैव चिंता व्यक्त करते रहे हैं। स्त्री विमर्श और समान अधिकार के नाम पर स्त्री को पुरुष प्रधान समाज ने छला ही है और आज भी स्त्री को कुछ लोग पदार्थ से अधिक कुछ नहीं समझते। फिर चाहे वह शराबी पति हो, या तलाक देने वाला आदमी। यहां यह भी विचारणीय है कि स्त्री शिक्षा ने जहां नये प्रतिमान स्थापित किये हैं, वहीं प्रकारांतर से प्रतिकार भी जनमा है। चूंकि स्त्री सामार्थ्य ने निजता को बढ़ावा दिया है। दूसरी ओर, हमारा अत्याधुनिक समाज पश्चिम से प्रभावित होकर भारतीय सांस्कृतिक-सामाजिक मूल्यों को भूलता जा रहा है। स्वतंत्रता के नये मापदंड निर्मित हो रहे हैं। ऐसी अनेक चिंताओं से परिपूर्ण यह कृति स्त्री के प्रति देहाकर्षण के विपरीत सच्ची संवेदना तलाशती प्रतीत होती है। लेखक ने देश के ही नहीं, अपितु विदेश के भी विभिन्न विद्वानों, चिंतकों और लेखकों के उद्धरण देकर अपने विचारों को पुष्ट करने का प्रयास किया है। पुस्तक में कुल चौदह आलेख हैं, जिनमें आदरणीय नागरजी अतिबौद्धिकता से बचे हैं। उन्होंने विषय और वस्तुपरक शिल्प के साथ देह, प्रेम और स्त्री को विश्लेषित किया है। लेखक के आत्मकथ्य का एक अंश पढ़ियेगा :-

'प्रेम ऐसा एहसास है, जिसे शब्दों में बांधना मुश्किल है। मोहब्बत की जुबां नहीं होती। वह हृदय से होती है और उसका इजहार आंखों से। आंखों की भाषा व्याकरण दोष नहीं जानती। असल प्रेम का पता विछोह में चलता है। त्याग में होती है, प्रेम की असली परीक्षा। विछोह प्रेम को विस्तार देता है। प्रेम से होती है परमात्मा की अभिव्यक्ति।'

इन दिनों दैहिक स्वतंत्रता, यौन स्वैच्छाचारिता, स्त्री कामेच्छा और निर्बाध यौन संबंधों पर खूब चर्चा है। इन पर मतांतर भी है। एक परिपक्व और संवेदनशील लेखक द्वारा इन्हीं विषयों के आसपास भ्रमण करते अनुषंगिक विषयों यथा, समलैंगिकता, लव जिहाद, ऑनर किलिंग, तीन तलाक और किराये की कोख आदि को नवीन संदर्भों के साथ व्याख्यायित करना महत्त्वपूर्ण है। सामान्यत: इन विषयों पर लेखन से बचा जाता है। लेकिन नागर जी ने भारतीय मर्यादित परिवारों की चर्चा करते हुए स्त्री के विभिन्न पक्षों को सच्चाई से उकेरा है। कृति की भाषा बोधगम्य होकर सहज-सरल हिंदुस्तानी है। बोलचाल के शब्दों में अर्थ गांभीर्य भरा पड़ा है। स्त्री संबंधी आज के अनेक उत्तर इस कृति में खोजे जा सकते हैं। एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य की इस पुस्तक की भूमिका बहुचर्चित लेखिका सुधा अरोड़ा जी ने लिखी है।

▸ समीक्षक : **प्रभु त्रिवेदी**, *प्रणम्य, 111, राम रहीम कॉलोनी, राऊ जिला इंदौर-453331 (म.प्र.) मो. 9425076996*

## मनुष्य व मनुष्यता के पक्ष मे प्रतिबद्धता की परिचायक कविताएं

पुस्तक : **अभी बहुत कुछ बचा है**
कवि : **डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला**
प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन प्रा. लि., गाजियाबाद मूल्य : 395 रुपये

वरिष्ठ कवि डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला का 16वां कविता संग्रह है जो अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद से हाल ही मे प्रकाशित हुआ है। 90 की वय मे झाला जी की सतत रचनात्मक सक्रियता उनकी प्रतिबद्धता का प्रमाण तो है ही अपने समय के स्याह पक्ष को उन्होंने अपनी कविताओं में सहजता से उभारने की कोशिश की है तथा अपने वैचारिक आधार पर अंधियारी शक्तियों के खिलाफ हस्तक्षेप के साथ सामूहिक तौर पर मुकाबला करने का आह्वान भी उनकी कविताओ में स्पष्ट दिखाई देता है। अपने स्वभाव की तरह कविताओं में भी वे कहीं लाउड नजर नहीं आते हैं। भाषा की शक्ति व आदमीयत पर उनका अटूट भरोसा कायम है। कविता उनके लिए मनोरंजन का माध्यम नही है, उनकी बैचैनी की अभिव्यक्ति है। कविता उनके लिए जीवन तथा जीवन मूल्य के पक्ष मे हस्तक्षेप करने का कारगर औजार है। 'कविता की जरूरत' में यह पंक्तिया गौर करने लायक हैं– 'और सबसे बड़ी जरूरत है उसे / उस आदमी की / जिसमे आग, पानी, पहाड़, पेड़ / सब आदमी की अस्मिता बन सके / तब आदमी / कविता हो जाता है / और कविता आदमी।' कविता उनके लिए प्रतिपक्ष की आवाज है, 'जो कविता होती है' में वे कहते हैं– 'वह लड़ती रहती है/ आदमी को/ गुलाम बनाने वाली/ जंजीरों से/ वह भूख के खिलाफ/ खड़े आदमी की/ ताकत होती है। 'कविता, कविता नही रह जाती' में कवि की पक्षधरता स्पष्ट नजर आती है, जहां वह कहता है– 'जब कविता/ झोपड़ियो के पास/ नहीं जाती/ कविता, कविता नहीं रह जाती....जब कविता/आदमखोरों के खिलाफ/ललकार नहीं बनती/कविता कविता/नहीं रह जाती।'

झाला जी की कविताएं आदमी के अनवरत संघर्ष की यात्रा, उसकी जीवटता, उसकी जीजिविषा तथा उसकी उम्मीद पर भरोसे की कविताएं हैं. तमाम घटाटोप, पराजय व निराशाजनक परिस्थितियो में भी उनके स्वप्न बरकरार हैं, उनके संकल्प दृढ़ है तथा उनका विश्वास अडिग है। 'आदमी : तुम कोई तोता नहीं' कविता में वे आह्वान करते हैं– 'अपनी ताकत को पहचानों/ और अपने चारों ओर फैले / जाल को तोड़ डालो/ बेचो मत अपनी आजादी को/ किसी भी कीमत पर/ तुम प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ / कृति हो / तुम आदमी हो / कोई तोता नही।'

देवत्व के बरक्स उन्हें अपने मनुष्य होने तथा अधूरेपन पर गर्व है (मेरा अधूरापन) तो मशाल न जला पाने की निराशा के बजाए चुपचाप न बैठने व दिया जलाए रखने की प्रसन्नता है (चुपचाप नही बैठा रहा)।

बेतरतीब विकास, अंधाधुंध शहरीकरण, उपभोक्तावादी संस्कृति आदि से उपजी संवेदनहीनता, संवादहीनता, आत्मकेंद्रिकता, अविश्वास, अलगाव के परिदृष्य मे कवि को स्वाभाविक तौर पर अपना घर, गांव, माता, पिता, अतीत सब याद आते है लेकिन वह नास्टेल्जिया का शिकार नजर नही आता है। 'टूट रहा है सब कुछ' और 'अभी बहुत कुछ बचा है' इन दो कविताओ मे कवि के मन के अंतर्विरोध व अंतर्द्वंद्व को समझा जा सकता है। रक्तरंजित समय की पीड़ा (यह समय), प्रजातंत्र को लेकर चिंता (प्रजातंत्र का तमाश), प्रकृति, पर्यावरण व बचपन के खोने की चिंता (गोधुलि बेला) भी झाला जी की कविता के केंद्र में है। साथ ही स्त्री की गरिमा, उसकी अस्मिता, आत्मनिर्भरता व स्वाधीनता की आकांक्षा के स्वरों को 'लड़की' व 'वह स्त्री' कविता में देखा जा सकता है तो 'एक दिन आएगा' में धर्म व जाति के विभेद मिटने की आशावादी दृष्टि दिखाई देती है।

▶ समीक्षक : **सुरेश उपाध्याय**, *133, गीता नगर ( लालाराम नगर के पास) इंदौर 452018 (म.प्र.) मो. 9424594808*

## आतंक निर्मूलन हेतु आदर्श पथ प्रदर्षक : 'आतंकनिर्मूलनं रामराज्ये'

पुस्तक : **आतंकनिर्मूलनं रामराज्ये** (शोध ग्रंथ), लेखक : प्रो. बालकृष्ण कुमावत, प्रकाशक : तुलसी मानस संस्थान, 81, माथुर वैश्य नगर, टोंक रोड़, जयपुर 302029 (राज.) मूल्य : 400 रुपये

श्री कुमावत जी ने मुख्य रूप से गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित मानस को आधार मानकर व उनके अन्य ग्रंथ, अध्यात्म रामायण, वाल्मीकि रामायण आदि का भी संदर्भ देते हुए समस्त प्रसंगो की बहुत सुंदर समीक्षात्मक व्याख्या की है। वे इसका श्रेय अत्यंत प्रणम्य भाव से बड़े-बड़े संत-महात्माओं के वचनों व ग्रंथों को देते हैं, जिनके सहारे व प्रेरणा से ये दुर्लभ कार्य कर सके। ग्रंथ के प्रारंभ में कवि 'बेनी' द्वारा- 'जो पे यह रामायण तुलसी न गावतो' के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रति प्रशंसा व कृतज्ञता व्यक्त की है। कुल 15 अध्यायों में निबद्ध इस ग्रंथ में अध्यायों का क्रम वही है जो रामचरित मानस का है। प्रथम अध्याय में 'रामजन्म के हेतु' के अंतर्गत श्रीराम के अवतार के कारणों का उल्लेख तथा उसके पश्चात आतंकवाद उत्पत्ति अर्थात रावण और उसके परिवार की उत्पत्ति, राक्षसों के अनाचार से ऋषि-मुनियों की चिंता, राम का राज्य त्याग व असुरों के संहार हेतु वन गमन, ऋषि-मुनियों से मिलन और मंत्रणा, पृथ्वी को राक्षसहीन करने का प्रण, शूर्पणखा एवं खरदूषण आख्यान, सीता अपहरण, आतंकवाद के विरुद्ध गृद्धराज जटायु का शहीद होना, राम का सैन्य संगठन, सीताजी की खोज हेतु चारों ओर यूथपतियों को सेना सहित भेजना, हनुमानजी का पराक्रम, लंका पर चढ़ाई हेतु वानर सेना का समुद्र पर पुल-निर्माण व पार जाना, राक्षसों का संहार तथा 15वें अध्याय में 'रामराज्याभिषेक' अर्थात रामराज्य की स्थापना।

रावण पूर्ण रूप से आतंकवाद का प्रतिनिधित्व करता है। उसके द्वारा सीताजी का छल-कपट से अपहरण न केवल श्रीराम की पत्नी का अपहरण था, बल्कि उनकी शक्ति और कीर्ति का भी। श्रीराम पूर्ण रूप से आतंक निर्मूलक थे, वे चाहते तो तुरंत उसका वध कर सकते थे, किंतु उन्होंने सुधार का अवसर प्रदान करते हुए युद्ध से पहले दो बार उसके विवेक को प्राथमिकता दी लेकिन शक्ति मदांध दुष्ट रावण सत्याग्रह से नहीं समझा तो प्रभु श्री राम ने उसका वध करना ही उचित समझा।

एक विशेष बात यह कि राम और रावण दोनों ही पराक्रमी हैं किंतु रावण का पराक्रम अधर्म, हिंसा, अत्याचार और दर्प से पूर्ण जबकि श्रीराम के पराक्रम का सौंदर्य उनकी निरभिमानता और विनयशीलता में सन्निहित रहता है। रावण सेना का सहयोग लेते हुए भी अपने बल पर अभिमान करता है- 'निजभुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहउ उतरु जोरिपुचढ़ि आवा।।' (6/78) जबकि श्रीराम अपने शौर्यबल और पराक्रम पर गर्व न करते हुए युद्ध में विजयश्री का संपूर्ण श्रेय वानरों को देते हैं- 'तुम्हरे बल मैं रावण मार्यो। तिलक विभीषन कहंपुनिसार्यो।।' (6/118)

रावण की युद्ध नीतिछल-कपटपूर्ण तो श्रीराम की सत्य-धर्म-न्याय से परिपूर्ण। यही कारण है कि प्रभु राम की अर्थात नैतिकता की विजय और अनैतिकता के पर्याय रावण की पराजय हुई। गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा सरल-सहज लोक भाषा में लोक कल्याण हेतु श्री रामचरितमानस का सृजन हुआ और इस अद्भुत ग्रंथ में आतंक निर्मूलन एवं सुशासन स्थापित करने के सारे सूत्रों का समावेश है जो आसुरी शक्तियों पर दैवीय शक्ति की विजय का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी भावना को लेकर प्रो. कुमावतजी ने इस ग्रंथ का सृजन किया।

▶ समीक्षक : **डॉ. शशि निगम**, *50, परिहार कॉलोनी, एयरपोर्ट रोड़ इंदौर-452005 (म.प्र.), मो. 7879745048*

## रचना और आज की चुनौतियां : डॉ. राजेंद्र प्रसाद पांडेय

(वैचारिक निबंध संग्रह)

पुस्तक : **रचना और आज की चुनौतियां**
लेखक : डॉ. राजेंद्र प्रसाद पांडेय
प्रकाशक : नीरज बुक सेंटर
मूल्य : 550 रुपये

हमारे धर्म अध्यात्म और सनातन संस्कृति की ऐसी सूक्ष्म परख और समझ अत्यंत कठिन परिश्रम और साधना से ही संभव है। 'धर्म और अध्यात्म' यह पहला लेख ही हमारे ज्ञानचक्षु खोलने के लिए पर्याप्त है; बशर्ते हम कितने पात्र हैं। बादल तो बरस ही रहा है। हमारी पात्रता ही हमें लबालब कर सकती है या खाली रख सकती है। पांडेय जी का यह पहला ही निबंध पढ़कर मुझे ग्लानि हुई कि अब तक मैंने इन्हें क्यों नहीं पढ़ा। वेद, पुराण, उपनिषद, मानस, गीता आदि-आदि शास्त्रों के ज्ञान रूपी पकवान को एक साथ गूंथकर बनाया गया यह अन्नकूट का प्रसाद है जो आपके अंतर्मन को तृप्त ही नहीं करता अपितु अपने अमृतोपम स्वाद और पोषण से आपको परिमार्जित भी कर देता है। आपको पुनर्नवा बना देता है। ज्ञान वही है, पर उसकी प्रतीति भिन्न है। अभिव्यक्ति का सुंदर ढंग उसे वैशिष्ट्य प्रदान करता है। अद्भुत कृति है यह, इसका भाषाई-सौदर्य तो हमारा मन मोहित कर ही लेता है; वैचारिक सौष्ठव हमारे चिंतन को परिपुष्ट भी करता है। सूत्रवाक्य, सूक्तियां मन में आकर एक ऐसा उजास फैला देती हैं कि तन-मन प्रदीप्त हो उठता है। भाव, विचार और चिंतन की ऐसी त्रिवेणी प्रवाहित होती है कि जन्मों-जन्मों के कुसंस्कारों का मार्जन होने लगता है।

धर्म, अध्यात्म, संस्कृति, विज्ञान, समाज, राजनीति, काव्य, साहित्य आदि-आदि जीवन के लगभग सभी विषयों को समेटने वाले ये निबंध लेखक की विचार-सरणि के विविध घाट हैं जिनमें स्नान कर हम स्वयं को निर्भार अनुभूत करने लगते हैं।

लोक का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां लेखक की दृष्टि न पहुंची हो। सनातन धर्म के संबंध में लेखक के विचार दर्शनीय हैं- 'अनेक विचारधाराओं और पद्धतियों के समन्वय के बावजूद सनातन धर्म केवल विशुद्ध नैतिक मान्यताओं को ही धर्म कहता है-यह प्रकृति से उत्पन्न वस्तुओं के अंधाधुंध भोग के विरूद्ध है। यह पर्यावरण को स्वच्छ, संतुलित और अविक्रत बनाए रखने का पक्षधर है, जिससे पृथ्वीलोक के साथ अन्य लोकों तक के ग्रहों, नक्षत्रों की स्थिति में हस्तक्षेप के बिना शांत, संतुष्ट और सदाचारी जीवन सभी मनुष्यों द्वारा जिया जा सके।'

'यह धर्म ब्रह्मांड को वैज्ञानिक और दार्शनिक दोनों दृष्टियों से देखता है....इस धर्म में व्यक्ति अपना विकास करके ईश्वरत्व तक को अपने में उगा सकता है, पा सकता है।...इसमें ईश्वर पुनर्जन्म आत्मा का अस्तित्व, कर्म, ज्ञान, भक्ति, योग आदि सभी को स्वीकारने या नकारने वाली भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के लोग बिना किसी संघर्ष के परस्पर तथा अन्य धर्मावलंबियों के साथ भी भाईचारे, सहिष्णुता व प्रेम के साथ रहते हैं।'

ऐसे ही अनेक उदात्त विचारों, जीवन दर्शन व लेखक के अनुभवों की सुंदर बानगी है यह निबंध संग्रह। लेखक ने वेदों, उपनिषदों व शास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। शास्त्रों के ज्ञान को वे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रखकर देखते हैं एवं समय के साथ परिवर्तनों की स्वीकार्यता को भी महत्व देते हैं।

▸ समीक्षक : **डॉ. दीप्ति गुप्ता,**
स्टेट टैक्स ऑफिसर, चेतक चेंबर्स, सातवीं मंजिल, छावनी रोड़, दवा बाजार के पास, इंदौर 452001 (म.प्र.)
मो. 9993364367

## ललित के गीतों का लालित्य : कोई हो मौसम मितवा

पुस्तक : **कोई हो मौसम मितवा**
गीतकार : **कुमार ललित**
प्रकाशक : शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली 32 मूल्य :295 रुपये

पद्मभूषण नीरज ने गीत को व्याख्यायित करने की शृंखला में कहा है कि 'गीत तो अस्तित्व का नवनीत है।' अर्थात जब गीतकार भलीभांति स्वयं की संवेदना का मंथन करता है, तो जो नवनीत प्राप्त होता है-वहीं गीत है। साहित्य की हर विधा पर भारी है गीत। बालक के जन्म पर बधाई गीतों से प्रारंभ हुई इसकी यात्रा तमाम सुख-दुख के रास्तों, अनगिनत उत्सवों से गुजरती हुई अंतत: 'गंगासागर तक पहुंचती है। कविता की वाचिक परंपरा में सदैव यह सिरमौर ही रहा है। 'कोई हो मौसम मितवा' युवा गीतकार कुमार ललित की प्रथम कृति है। कृति में अनेकश: गीत-पारखियों ने इन गीतों को खूब खूब सराहा है। कृति का पहला ही गोत सूरज रोज निकलता है गीतकार की दशा और दिशा को निर्धारित कर देता है। सकारात्मक सोच के साथ निरंतर चलते रहने को प्रेरित करने वाला है यह गीत। दूसरा गीत 'गीत से कब मन भरा है' गीत के महात्म्य को रूपायित करता है- 'गीत क्या है, निर्झरा है/गीत से कब मन भरा है/गोल-गंगा मे नहाकर/हर रसिक भव से तरा है।' गीत से मन भर भी नहीं सकता। हर लयबद्ध शय का हमारे जीवन से गहरा जाता है। सांसों का क्रम हृदय की धड़कन, नब्ज की गति, नदी की कलकल, हवा की सरसराहट, पृथ्वी का घूमना और भी न जाने क्या-क्या... जो भी लयबद्ध है वही जीवंत है। तब गीत हम से कैसे दूर हो सकता है? जिसे कोई भी, कैसा भी गीत प्रभावित नहीं करता, उसके इंसान होने पर संदेह किया जा सकता है। मोबाइल ने हमसे बहुत कुछ छीन लिया है। जिनमें तमाम चीजों के बीच चिड़ियों की मिठास को श्री गणना की जा सकती है। अन्यथा पहले जब खत मिलता था तो कुमार ललित जैसे गीतकार कह उठले थे। 'आज मुझको फिर मिला इक खत नया/और मेरा मन हुआ फिर रेशमी।' पुस्तक के गीत प्राप्ति-अप्राप्ति का डिडिम घोष करते हैं। जीवन के तमामतर रंगों से सराबोर ये गीत हमें संवेदना के धरातल पर ले जाकर झकझोरते हैं। आस-विश्वास के टॉनिक से जीवन को स्फूर्ति प्रदान करते हैं। पुस्तक के शीर्षक गीत का मुखड़ा देखे- 'रखो दम में दम मितवा/दामन में खुशबू भर लो/भूलो सारे राम मितवा।'

'चिड़िया-सी कब उड़ पाती हैं' गीत में बेटियों के जीवन का बहुत ही जीवंत चित्रण कवि ने किया है, वहीं 'किंतु दिल में तो सदा पीहर रहा' गीत बेटी के वैवाहिक जीवन की मार्मिक झांकी है। एक अन्य गीत में बेटी की जिंदगी का यह सच भी द्रष्टव्य है- 'हर बेटी को बांध रही हैं अनगिन लक्ष्मण रेखाएं/ स्वर्ण-हिरण करते आकर्षित देखें कब तक रुक पाएं।' धर्म के नाम पर बंटते इंसान को रेखांकित करते हुए कुमार ललित कहते हैं, 'मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे सब बेच रहे हैं रब को/अपना-अपना सौदा बढ़िया बतलाते हैं सब को/अपने झंडे-बैनर लेकर दुनिया है बौराई/कोई हिंदू-मुसलमान है, कोई सिख ईसाई।' आज का इंसान समय के अभाव का रोना रोता रहता है। निरंतर पनपने वाली संवादहीनता, मिलने-जुलने का अभाव अपनेपन के बीच में खाइयां पैदा कर रहा है। प्रस्तुत गीत का मुखड़ा इस पीड़ा को सुंदरता से व्यक्त करता है, 'बहुत दिनों से दरवाजे पर दस्तक नहीं हुई/अपनी घोर उपेक्षा से दरवाजा आहत है।' कुल मिलाकर 'कोई हो मौसम मितवा' में प्रेम की कोमल अनुभूतियां अपने इंद्रधनुषी रंगों से संग्रह को महत्वपूर्ण बना रही हैं। ये गीत हृदय को स्पर्श करने में कोताही करने वाले गीत नहीं हैं। कुमार ललित के गीतों का लालित्य साहित्य जगत में अपनी विशिष्ट पहचान, विशेष प्रतिष्ठा पाने का अधिकारी है, ऐसा मेरा विश्वास है।

▶ समीक्षक : **अशोक अंजुम**, स्ट्रीट-2 चंद्र विहार कॉलोनी (नगला डालचंद) क्वारसी बायपास, अलीगढ़ 202002 (उ.प्र.) मो. 9258779744

## मौन में मुखरित होती संवेदना

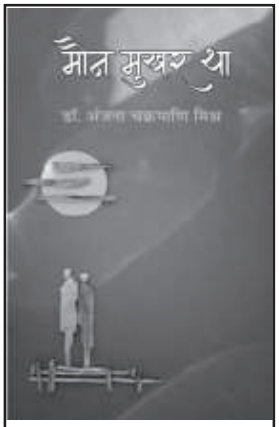


पुस्तक : **मौन मुखर था**
लेखक : **अंजना चक्रपाणि मिश्र**
प्रकाशक : मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 मूल्य : 200 रुपये

इस काव्य संग्रह में विविध विषय है अपने परिवेश, व्यवस्था और संबंधों को लेकर विद्रोह नहीं है, न ही कोई राग द्वेष या संकीर्णता बल्कि उनके कहन में शब्द रचाव की तनी रस्सी पर नट नागरी है। अपने बचपन के याद शहर बनारस की मिट्टी की सोंधी खुशबू भी उनमें खदबदाती है- 'दिल में बसी हुई यारों/खुशनुमा फजा मेरे बनारस की/ कबीर थे जन्में और तुलसी ने रची चौपाइयां/ऐसी मिट्टी मेरे बनारस की।'

परस्पर स्नेह और मर्यादा से लिपटे संबंधों के बीच ईर्ष्या व लालच किस कदर हावी होकर सिर्फ संबंधों को ही नहीं वरन पूरे माहौल को ही खराब कर देते हैं। यह भी उनकी कविताओं में महसूस किया जा सकता है, बानगी देखिए.. 'कागजी रिश्ते में...वे सुबह और शाम/ मेरी जी भर बुराइयां करते रहे/रह अपनी ही रौ में हम/सुन रुसवाइयां, निखरते रहे।'

एक और कविता है रिश्तों की तिजारत, 'रिश्तों की तिजारत में/कुछ लोग महारथी होते हैं/होते ये यार मतलब के /निहायत स्वार्थी होते हैं।' स्त्री का मन भावनात्मक संबंधों के लिए कई बार बेचैन होता है और तब सिर्फ मां याद आती है- 'पहनकर अकेले में अक्सर/ तेरी वो साड़ी सिल्क की अम्मा/ अक्स मेरा आइने में/तेरा ही लगता है अम्मां...।'

स्त्री को अपने अंदर अपने बच्चों के लिए कुछ अलग ही तरह की छटपटाहट महसूस होती है। इसीलिए उसके स्वर समझाईश में बच्चों को सजग कर उठते हैं। यह कविता पढ़ते-पढ़ते आंखें नम व दिल भारी हो जाता है क्योंकि यह हर मां की पुकार होती है, यह कविता डॉ. अंजना मिश्रा ने अपने बच्चों, निष्ठा व विभु के लिए लिखी है, जिसमें एक मां का सब कुछ समाया है...दर्द, चिंता, प्रेम, परवाह, नसीहत आदि। ऐसा लगता है मां के दोनों हाथ दुआओं में जुड़े हैं...' स्वर्णिम मृग मरीचिका से/ कभी भ्रमित ना होना तुम/ मायावी दुनिया से युद्ध में /अरावली पर्वत से डटे रहना तुम..।'

'बातों ने तेवर बदली' कविता पढ़ अनायास याद आया कि तेवर व जेवर दोनों ही संभाल कर रखने की चीज होते हैं। मुस्कान अधर पर तब आ जाती है-जब टपरी पर चाय पीने को दिल करता है-पढ़ती हूं। स्त्री के कलेजे में फंसे कुछ मासूम से अरमान होते हैं जो संबंधों के प्रति जीवित स्पंदनों और जवाबदेहियों की चाह रखते हैं। बाहर से वो बहुत मजबूत, व्यस्त हो पर भीतर जिंदगी का सब कुछ संभाल लेने का टिकाऊपन चाहती है ताकि अपने हिस्से की खुशी वो उनके नाम कर कुछ खुशनुमा पल अपने पल्लू से बांध ले। इसके लिए बस उसकी मासूम सी चाह होती है कि कोई उसका अपना स्त्री के मन को जानने समझने के लिए उसके पास स्त्री की तरह चला आए, क्योंकि वो स्नेहिल स्पर्श की चाह रखती है...हमेशा ही सुनती हुई वो/ अचानक से बोल पड़ी कि/ है आज तलब है उसे सुनाने की...।'

लेखिका के मन की पीड़ा को बयां करती बहुत ही मार्मिक कविता है 'कुक्षी मृत्यु' व 'परित्यक्ता' जिसमें ज्वलंत नैराश्य के साथ मन पर तने बोझ को भांप लेने की क्षमता है।

▶ समीक्षक : **पद्मा राजेंद्र**, संस्थापक अध्यक्ष वामा साहित्य मंच मो. 9406617502

## फटी बिवाइयों के लहू से लाल 'पांव-पांव पगडंडी'

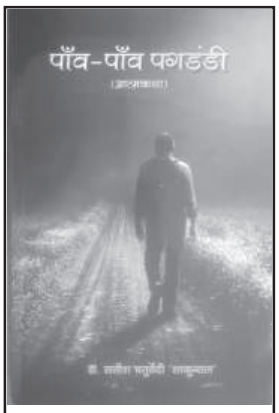


पुस्तक : **पांव-पांव पगडंडी**
लेखक : सतीश चतुर्वेदी 'शाकुंतल'
प्रकाशक : निखिल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, आगरा मूल्य : 500 रुपये

पुस्तक की भाषा अपने सहज ढलाव के साथ बहती है। आजादी के एक-दो दशक बाद तक का भारत भी आजादी के पहले जैसा ही था। गरीबी जाते-जाते टिक जाती थी। गेहूं की फसल कटने के बाद सिला (टूटी हुई बालियां) बीनने मध्यम वर्ग में माने जाने वाले किसान परिवारों के भी बच्चे होते थे। आजादी के ठीक बाद के जीवन में जो अभाव थे वे सहज स्वीकार्य थे। किसी की कलाई की चूड़ियां उतारना सामान्य घटना नहीं है। यह किसी सुहागिन स्त्री से पूछिए पुरुष से नहीं। लेकिन न पत्नी को बुरा लगता है और न पति को। इस दंपति का उसे दायित्व की तरह स्वीकारना ग्राम्य संस्कृति का ही अंग हो सकता है। यहां गरबीली गरीबी का मुक्तिबोधीय रूप उपस्थित है, जिसमें पूरी ईमानदारी के साथ गांव की विपन्नता और उदारता का एक साथ चित्रण वह भी अभिधा में है। यह सहज स्वीकारोक्ति सरल हृदय शाकुंतल के ही बूते की बात है- 'गिरीश-अशोक के विवाह संपन्न हुए। दोनों ने अपना-अपना भार वहन किया। मैं किसी भी प्रकार की आर्थिक मदद नहीं कर सका। बस मेरी शादी में रजनी को मिली छः चूड़ियों को माता जी ने तीनों में दो-दो करके बांट दिया।' दो-दो लाख वेतन लेकर भी काम न करना उलटे काम करने वाले की चुगली का चरित्र शिक्षा के नैतिक पतन की निशानी है। लेखक की कर्मठता को उसकी कमजोरी की तरह लिया जाना शिक्षा प्रणाली की विडंबना है। वे लोग जो काम करना नहीं चाहते कर्मठ उनके लिए शत्रुवत होते हैं। इसीलिए वे 'आपकी ली हुई सांसों का हिसाब भी कुर्सी तक पहुंचाते रहते हैं।' (पृष्ठ 188)

'सहयात्रा' संस्था सतीश जी की साहित्यिक यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। इसी शीर्षक के ग्यारहवें अध्याय में सतीश जी एक प्रश्न कवि और उसकी काव्य नैतिकता का छेड़ना नहीं भूलते। उनके प्रश्न में यह अंतर्भूत है कि नीरज जी जैसे कवि की ऐसी कौन-सी विवशता थी कि वे अपनी ही अध्यक्षता में अपनी रचनाओं को दूसरों को पढ़ने देते थे, 'हाथरस की अग्रवाल धर्मशाला में कवि सम्मेलन था। नीरज जी की अध्यक्षता में मेरठ से आई एक कवयित्री नीरज जी की गजलें सुना रही थी।' (पृष्ठ 99) इतना ही नहीं आत्मकथाकार के द्वारा टोकने पर नीरज का जुमला आश्चर्यचकित करता है, 'कोई बात नहीं शाकुंतल! बेचारी इतनी दूर से आई है, कुछ पैसे मिल जाएंगे।' (पृष्ठ 99) उनके द्वारा यह भी कहा जाना कि, 'बेटा बहुत अच्छा गाती हो।' यह उनके द्वारा शाकुंतल जी को संतुष्ट करने का एक भोंडा तरीका था कि जैसे उन्होंने उस कवयित्री को अच्छा गाती हो लिखती नहीं कहकर व्यंग्य किया हो। यदि सतीश जी उनके व्यंग्य से संतुष्ट हो गए होते तो यह कदापि न लिखते कि, 'यह साहित्यिक चोरी का प्रत्यक्ष अद्भुत सार्वजनिक प्रसंग था।' (पृष्ठ 99) इसके पीछे उसके मित्रों के साथ उसका खुद का निष्कलुष आचरण भी है। लेकिन जहां उसका निष्कलुष आचरण और मृदुल व्यवहार उसके सामाजिक और आर्थिक स्थिति के संबल बनते हैं वहीं ये सरकारी तंत्र में दुर्बलता की तरह आंके जाते हैं। इससे भ्रष्ट तंत्र से ऊबकर लेखक स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेता है लेकिन वहां भी उसे चैन से रहने नहीं दिया जाता। तंग आकर ट्रेजरी ऑफिसर के सामने एक स्वाभिमानी को हाथ जोड़कर खड़ा होना पड़ता है। इसी अनुभव के आधार पर वह लिखता है, 'एक शासकीय सेवक जितना मकान बनाने में नहीं थकता, उतना इन कार्यालयों के व्यवहार से पस्त हो जाता है।' (पृष्ठ 197)

▶ समीक्षक : **डॉ. गंगाप्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'** ई-504, शृंगाल होम्स, डी-मार्ट, अलथान, सूरत 395017 (गुजरात) मो. 8000691717

## समिति समाचार

### कविता लिखी नही जाती, अवतरित होती है
**–राकेश शर्मा**

साहित्य निर्माण का उद्देश्य मानव उपयोग व मानव कल्याण हेतु होता आया है। साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन से न केवल साहित्यिक पिपासा शांत होती है वरन आज के निरंतर क्रूर होते समय में मानवता को और अधिक जानने, अपनाने का अवसर मिलता है। उज्जैन की संस्था 'सरल काव्यांजलि' द्वारा आयोजित ऐसे ही एक प्रतिष्ठित आयोजन और पुस्तक विमोचन कार्यक्रम में मुख्य अतिथि, ख्यात लेखक, 'वीणा' के यशस्वी संपादक श्री राकेश शर्मा ने साहित्य और राष्ट्रकवि श्रीकृष्ण सरल जी पर बोलते हुए कहा, 'कविता लिखी नहीं जाती वह अवतरित होती है। इस देश का जनमानस सही को सही और गलत को गलत कहने का माद्दा रखता है। वर्तमान पीढ़ी को इस देश की संस्कृति को समझना चाहिए कि संस्कृति, शहीदों की बात भी करती है तथा शहीदों के लिए की गई कोई भी बात, सरल जी के बिना पूरी नहीं हो सकती।'

इस अवसर पर वीणा के संपादक श्री राकेश शर्मा जी को स्मृति चिह्न, शॉल भेंट कर 'साहित्य सम्मान' दिया गया। कार्यक्रम के अध्यक्ष वरिष्ठ साहित्यकार, समालोचक, डॉ. शैलेंद्र शर्मा ने कहा कि साहित्य और संस्कृति के लिए हमें सदैव सजग होना चाहिए। सरल जी का वात्सल्य भाव नई पीढ़ी के साहित्यकारों के लिए भी था। शैलेंद्र जी ने 'वीणा' साहित्यिक अवदान पर विस्तार से प्रकाश डाला और कहा कि यह न केवल इंदौर के लिए वरन पूरे हिंदी जगत के लिए गौरव का विषय है कि हिंदी की एक यशस्वी पत्रिका 'वीणा' अपने निरंतर प्रकाशन की शताब्दी पूर्ण करने जा रही है।

'क्रांति गंगा' जैसा काव्य पूरे विश्व में कहीं नहीं है। विशेष अतिथि, वरिष्ठ साहित्यकार, संयुक्त आयुक्त, इंदौर श्री प्रतीक सोनवलकर ने कहा कि ईमानदारी से कार्य करना भी देश सेवा का प्रतीक है, उन्होंने सरल जी के साहित्य की सुंदर व्याख्या भी की। ख्यात कवि अशोक भाटी ने कहा कि सरल जी चाहते तो जीवन भर हास्य और श्रृंगार लिखते रहते लेकिन उन्होंने शहीदों और आम आदमी के लिए लिखा।

प्रारंभ में सरस्वती वंदना डॉ. आर. पी. तिवारी ने प्रस्तुत की। संस्था की परंपरानुसार सरल जी की कविता का वाचन संजय जौहरी ने किया, स्वागत भाषण और संस्था परिचय, संकलन संपादक संतोष सुपेकर ने दिया, संकलन का परिचय उपाध्यक्ष दिलीप जैन ने, स्मृति चिह्न का वाचन श्रीमती आशागंगा शिरढोणकर ने और अतिथि परिचय वाचन मानसिंह शरद ने किया। अतिथि स्वागत डॉ. पुष्पा चौरसिया, प्रदीप 'सरल', डॉ संजय नागर, राजेंद्र देवधरे, डॉ. मोहन बैरागी, श्रीमती माया बदेका, के.एन. शर्मा 'अकेला' और रामचंद्र धर्मदासानी ने किया, संचालन नितिन पोल ने किया।

'वीणा' के संपादक श्री राकेश शर्मा को साहित्य सम्मान से अलंकृत करते हुए अतिथिगण

इस अवसर पर ख्यात चित्रकार डॉ

श्रीकृष्ण जोशी, प्रो.राकेश ढंड, राजेंद्र नागर, अनिल चौबे, शैलेश पाठक, मुक्तेश मनावत, आर.जे. पटेल, विनय अंजू कुमार सिंह, सौरभ चातक, रवींद्र पहलवान, नरेंद्र शर्मा, के.पी. त्रिपाठी सहित अनेक गणमान्य नागरिक उपस्थित थे।

## प्रिय प्रवास और वेदैही वनवास जैसी कृतियों के रचयिता हरिऔध का स्मरण

कालजयी रचनाकार श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' को समिति ने सादर नमन किया। खड़ी बोली के सशक्त कवि तथा संस्कृत छंदों को हिंदी में प्रस्तुत करने वाले कवि श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध को सादर स्मरण करते हुए श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति ने कालजयी रचनाकार स्मरण शृंखला में उन्हें याद किया। पहले उनके चित्र के साथ प्रिय प्रवास की एक रचना को रेखांकित करते हुए पोस्टर का अनावरण किया गया। इसके पश्चात समिति के प्रधानमंत्री श्री अरविंद जवलेकर ने प्रत्येक मंगलवार को होने वाले इस विशिष्ट कार्यक्रम, जिसमें हर बार एक कालजयी साहित्यकार को सादर स्मरण कर उसके कृतित्व और व्यक्तित्व पर हम गोष्ठी करते हैं, के बारे में जानकारी दी।

सर्वप्रथम डॉ. अखिलेश राव ने प्रिय प्रवास और उनके प्रकृति वर्णन का संदर्भ देते हुए अपनी बात रखी। मनीषा व्यास ने हरिऔध जी के बाल साहित्य और संस्कृत छंदों का हिंदी में प्रथम प्रयोग के संदर्भ में उन्हें याद किया। मणिमाला शर्मा ने उनकी समसामयिक रचना 'कर्मवीर' सस्वर सुनाई। अर्पण जैन ने हिंदी भाषा के संदर्भ में उन्हें याद करते हुए कवि सम्राट पुकारे जाने का संदर्भ सुनाकर बताया कि वे प्रांतीय भाषा को भी पूरा सम्मान देते थे।

डॉ. आरती दुबे ने पुराने को नये रूप में गढ़ने के लिए माने जाने कवि को सादर याद किया। उनकी रचना 'दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला...' के अलावा संचालन कर रहे डॉ. पुष्पेंद्र दुबे ने उनकी बाल रचना में- 'उठो लाल अब आंखें खोलो...' जैसी रचनाएं सुनाई।

अंत में आभार प्रबंधमंत्री श्री घनश्याम यादव ने किया। इस अवसर पर श्री हरेराम वाजपेयी, तनिष्का सक्सेना, ममता सक्सेना, रामचंद्र अवस्थी, राजेश शर्मा, दिनेश नाथ, मुकेश तिवारी, पद्मा राजेंद्र, डॉ. अंजना चक्रपाणि मिश्र, डॉ. दीप्ति गुप्ता, गोविंद दुबे, श्री अश्विन खरे, सुरेश कुलकर्णी, आलोक खरे, नयन राठी, छोटेलाल भारती, हेमेंद्र मोदी, कमलेश पांडे आदि कई साहित्यकार और सुधीजन उपस्थित थे।

## समिति में राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर को याद करते हुए

30 नवंबर, 1908 को जन्मे पौरूष के प्रतीक, समय पुत्र रामधारी सिंह दिनकर नाम के अनुरूप भारतीय साहित्य, संस्कृति के दिनकर के रुप में जाने जाते रहेंगे। राष्ट्रकवि दिनकर की कालजयी कृतियों में संस्कृति के चार अध्याय, उर्वशी, कुरुक्षेत्र, परशुराम की प्रतीक्षा, रेणुका, हिंदी साहित्य की अनमोल कृतियों के रचयिता की पुण्यतिथि 25 अप्रैल को श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति ने कालजयी साहित्यकार स्मरण की चौथी शृंखला में

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का पोस्टर लोकार्पण करते हुए

दिनकर जी को सादर याद किया।

इस अवसर पर मनीषा शर्मा ने भाषा, विषय और साहित्य के दृष्टिकोण से उन्हें सर्वोपरि कवि बताया तथा उन्हें अचूक आवाह्न शक्ति का कवि बताया। डॉ. समता जैन ने कहा कि उनके साहित्य के प्रकाश से आज भी हम दैदीप्यमान हो रहे है। डॉ. अखिलेश राव ने कहा कि स्वतंत्रता के बाद सुविधाओं से दूर रहकर साहित्य पथ को अपनाने वाले कवि रहे। मुकेश तिवारी ने कहा कि ऐसे साहित्यिक सूर्य कवि कभी अस्त नहीं होते है। डॉ. मनीषा व्यास ने उनकी प्रसिद्ध रचना सिंहासन खाली करो की जनता आती है सुनाई। डॉ. अर्पण जैन, मीना, गोदरे, मुकेश इंदौरी, नीति अग्निहोत्री, आशा जाकड़, शांता पारेख, आरती दुबे ने भी अपने विचार रखें। मणि माला ने उनकी एक कविता का पाठ किया तथा सुधा चैहान ने उन्हें साहित्य पुरोधा कहते हुए कलम आज उनकी जय बोल कविता का पाठ किया।

स्वागत उद्बोधन एवं कार्यक्रम की रुपरेखा पर समिति के प्रधानमंत्री अरविंद जवलेकर ने कालजयी रचनाकारों के संदर्भ में किये जा रहे कार्यक्रमों के बारे में बताया। संचालन साहित्य एवं संस्कृति मंत्री डॉ. पद्मा सिंह ने किया एवं आभार गिरेन्द्र सिंह भदौरिया ने व्यक्त किया। इस अवसर पर समिति के प्रचार मंत्री हरेराम वाजपेयी, प्रबंध मंत्री घनश्याम यादव, प्रकाशन मंत्री श्री अनिल भोजे, शोध मंत्री डॉ. पुष्पेन्द्र दुबे के अलावा सदाशिव कौतुक, रामचंद्र अवस्थी, डॉ. दीप्ति गुप्ता, दामिनी सिंह, विनीता तिवारी, डॉ. अंजुल कंसल, विजय सिंह चैहान, सुरेश कुलकर्णी, राजेन्द्र पांडे, नयन राठी तथा अभिजीत त्रिपाठी आदि के अलावा लेखिका संघ की अनेक साहित्यकार मौजूद थी।

श्री रामधारी सिंह दिनकर की कविता का पोस्टर

## 'श्री प्रभात से संजारी' ने अमिट छाप छोड़ी श्रोताओं में
## स्व. पं. कुमार गंधर्व रचित धुन उगम रागों में डूबे संगीत प्रेमी

श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इंदौर तथा स्वर निधि संगीत प्रतिष्ठान मुंबई के संयुक्त तत्वावधान में समिति का शिवाजी सभागार त्रिवेणी का संगम बन गया, जब साहित्य, कला और संगीत की तीनों धाराओं का अनुपम संगम हुआ। प्रसंग रहा श्रीमती कांचन प्रकाश संगीत की अनुपम कृति श्री प्रभात से संजारी कविता संग्रह का लोकार्पण। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए पूर्व राज्यपाल न्यायमूर्ति श्री व्ही.एस. कोकजे ने कहा कि इनकी कविताओं में आंतरिक प्रकाश है, मैं अभिभूत हूं इनके सृजन से। मुख्य अतिथि देवपुत्र के संपादक कृष्णकुमार अष्ठाना ने कहा कि कविता संग्रह, साहित्य कला और संगीत का समागम है। शब्द जैसे चित्रों में उतर आए हैं। कृति शाश्वत लेखन का उदाहरण है। समीक्षा कर रही डॉ. पद्मा सिंह ने आलेख वाचन करते हुए कृति को शब्द साधक की सर्वोत्कृष्ट धरोहर बताई। रचनाएं प्रकृति और पुरुष के बीच रागात्मक संबंध बनाती है। इस अवसर पर नाट्यकर्मी श्री अरुण डिके ने भी शुभकामनाएं दी। लेखिका कांचन ने अपने लेखन संदर्भ प्रकाश डाला एवं कुछ रचनाएं सस्वर सुनाई।

कार्यक्रम के दूसरे भाग में स्व. पं. कुमार गंधर्व रचित धुन उगम रागों पर सुप्रसिद्ध शास्त्रीय गायक पं. डॉ. प्रकाश संगीत ने अपनी प्रस्तुतियों से संगीत प्रेमियों का मन मोह लिया, उनके साथ संगत में श्री राहुल बेने, दीपक खसरावल, अमित आलेकर तथा कु. गुरुषा ने संगत दी। 3 घंटे तक साहित्य, संगीत के कार्यक्रम का आनंदमयी संचालन श्री संजय पटेल ने किया व समिति की प्रशंसा

कृति का लोकार्पण करते हुए अतिथि

डॉ. प्रकाश संगीत प्रस्तुति देते हुए

की। अतिथियों का स्वागत प्रधानमंत्री श्री अरविंद जवलेकर के अलावा श्री राजेश शर्मा, श्री घनश्याम यादव, श्री अनिल भोजे, पल्लवी आदि ने किया। इस अवसर पर सरस्वती वंदना पं. चेतन संगीत ने एवं अंत में आभार हरेराम वाजपेयी ने व्यक्त किया। कार्यक्रम में सर्वश्री राकेश शर्मा, जयंत भिसे, डॉ. पुष्पेंद्र दुबे, अश्विन खरे, त्रिपुरारीलाल शर्मा, डॉ. जी.डी. अग्रवाल, संतोष अग्निहोत्री, श्री तिवारी, डॉ. शुभा चौधरी, छोटेलाल भारती, कमलेश पांडे, समिति परिवार व अनेक संगीत प्रेमी उपस्थित थे।

## कविवर रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' को समिति ने याद किया

02 मई, 2023 को श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति ने कालजयी साहित्यकार की पांचवी शृंखला में कविवर रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' को सादर याद करते हुए उनके साहित्यिक अवदान पर चर्चाएं की। उनकी प्रसिद्ध रचना के साथ उनके चित्र का अनावरण उपस्थित सदस्यों ने किया। इस अवसर पर अर्पण जैन ने कहा कि वे छायावादी कवि थे और प्रगतिशीलता उनके साहित्य में दिखाई देती थी, उन्होंने पुस्तकों के महत्व के बारे में कई रचनाएं लिखीं। विनीता तिवारी ने उनकी एक रचना 'लो लगा लो चांदनी का चंदन' कविता सुनाई। राज केसरवानी ने जबलपुर में श्री अंचलजी के साथ बिताये साहित्यिक मंचों की यादें ताजा की।

श्री कृष्णकुमार अष्ठाना ने कहा कि कालजयी लेखन वहीं होता है जो शाश्वत हो। उस समय के रचनाकारों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये प्रेरणादायक रचनायें देकर हमको जाग्रत किया था, उन्होंने अंचलजी के ऊपर विचार व्यक्त किये और कहा कि राष्ट्र जागरण में हम सबको मिलकर काम करना चाहिये। त्रिपुरारीलाल शर्मा ने उनकी 108वीं जयंती पर 'जब नींद नहीं आती होगी' रचना का सस्वर पाठ किया एवं एक मई श्रम दिवस से उनके जन्मदिन को जोड़ते हुए अपने विचार व्यक्त किये।

आरंभ में सरस्वती वंदना ममता सक्सेना ने की। स्वागत उद्बोधन एवं आभार साहित्य एवं संस्कृति मंत्री डॉ. पद्मा सिंह ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता समिति के प्रधानमंत्री श्री अरविंद जवलेकर ने की। इस अवसर पर पुष्पेंद्र दुबे, घनश्याम यादव, राजेश शर्मा, हरेराम वाजपेयी, सदाशिव कौतुक, डॉ. कमल हेतावल, डॉ. अंजुल कंसल, मणिमाला शर्मा, लक्ष्मीनारायण उग्र, डॉ. दीप्ति गुप्ता, राजेंद्र पांडेय, शांता पारेख, उमेश पारीख, नयन राठी, मुकेश तिवारी आदि अनेक साहित्यकार एवं लेखिका संघ की सदस्य उपस्थित थी। अंचल जी की इस कविता को विशेष तौर से प्रस्तुत किया गया।

**स्वप्न और सत्य**

'स्वप्न है संसार तो, किस सत्य के कवि गीत गाए,
तोड़कर अपना हृदय, किस सत्य की प्रतिमा बनाए।'

## पुण्यतिथि पर समिति ने याद किया श्री वियोगी हरि को

09 मई, 2023 को श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति ने कालजयी साहित्यकार की छठवीं श्रृंखला में कविवर श्री वियोगी हरि को सादर याद करते हुए उनके साहित्यिक अवदान पर चर्चाएं की। उनकी प्रसिद्ध रचना 'वीर सतसई', विश्व मंदिर को विशेष तौर से उल्लेखित किया गया तथा उनकी रचना देशद्रोह के संदर्भ में व्यक्त विचारों के साथ उनके चित्र का अनावरण किया गया।

देश प्रेम के संदर्भ में उनकी यह रचना–

चित्र–कविता का लोकार्पण करते हुए सुधीजन

'भूलेहु कबहुं न जाइए देश–विमुख जन पास,
देश विरोधी संग ते–भलो नरक को वास।'

उनके कृतित्व पर डॉ. मनीषा शर्मा ने कहा कि छतरपुर में 1826 में जन्में इस महान साहित्यकार का पूरा नाम हरिप्रसाद द्विवेदी था, जो वियोगी हरि के नाम से विख्यात हुए। वे खड़ी बोली व ब्रजभाषा के साहित्यकार रहे, उनकी 50 से अधिक कृतियां हिंदी जगत की धरोहर है। डॉ. अर्पण जैन ने कहा कि उनका विश्व मंदिर ऐसा था जहां कोई भी आराधक बिना किसी रोक–टोक के अपने आराध्य की आराधना कर सकें। वो संपूर्ण विश्व की मंगल कामना के कवि थे। श्री मुकेश तिवारी ने कहा आज हम एक समाज सुधारक के साथ याद कर रहे हैं। डॉ. अखिलेश राव ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वो गांधी जी से प्रेरित थे एवं एक हरिजन बालक को गोद लेकर हरिजन उद्धार का अनुपम उदाहरण समाज के सामने प्रस्तुत किया। मणिमाला शर्मा ने उनकी प्रसिद्ध रचना विश्व मंदिर की कुछ पंक्तियां सुनाई। श्री मोहन रावल ने कहा कि समिति प्रत्येक सप्ताह एक साहित्यिक यज्ञ को स्वरूप देती है।

कार्यक्रम का संचालन साहित्य एवं संस्कृति मंत्री डॉ. पद्मा सिंह ने किया। आभार प्रचार मंत्री हरेराम वाजपेयी ने व्यक्त किया। कार्यक्रम में वरिष्ठ साहित्यकार श्री सूर्यकांत नागर, समिति के प्रधानमंत्री श्री अरविंद जवलेकर, श्री राजेश शर्मा, श्री घनश्याम यादव, श्री सुभाष कुलकर्णी, श्री उमेश पारेख, डॉ. विभा दुबे, लक्ष्मीनारायण उग्र, आशुतोष शुक्ला, मुकेश तिवारी, दिनेश नाथ, आदि अनेक साहित्यकार उपस्थित थे।

## वरिष्ठ निबंधकार हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं हिंदी मंच पर मालवी छटा बिखेरने वाले बालकवि बैरागी जी का सादर स्मरण

16 मई, 2023 को श्री मध्यभारत हिंदी साहित्य समिति द्वारा अपनी कालजयी साहित्यकारों के पुण्य स्मरण की साप्ताहिक श्रृंखला के अंतर्गत आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा श्री बालकवि बैरागी की स्मृति में कार्यक्रम का आयोजन किया। द्विवेदीजी की रचना–सहचित्र एवं हेमराज प्रजापति द्वारा बैरागी जी की स्मृतियों का पोस्टर भी लोकार्पित किया गया। मुख्य अतिथि

चित्र–कविता का लोकार्पण

वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. सरोज कुमार थे, अध्यक्षता न्यायमूर्ति श्री वीरेंद्र दत्त ज्ञानी ने की। इस अवसर पर बोलते हुए न्यायमूर्ति श्री ज्ञानी जी ने कहा की आचार्य द्विवेदी जैसा समीक्षक दूसरा नहीं हुआ, उनका ज्योतिष तथा साहित्य पर समान अधिकार था। डॉ. सरोज कुमार ने कहा की बालकवि की चर्चा स्मृतियों का पर्व है। उन्होंने बालकवि बैरागी पर कविता का पाठ भी किया।

हरेराम वाजपेयी ने स्मरण दिलाया कि बैरागी जी का समिति के साथ गहरा आत्मीय संबंध रहा था, उन्होंने शरद पूर्णिमा के अलावा कई अवसरों पर समिति में काव्य पाठ किया था। प्रधानमंत्री अरविंद जवलेकर ने आभार व्यक्त करने के साथ बताया कि बैरागी की अस्वस्थता के कारण 2 वर्ष पूर्व समिति ने उनके गृहगांव मनासा में जाकर अभिनंदन किया था तथा उनके अवसान पश्चात उनकी स्मृति में वृहत कवि सम्मेलन किया गया।

इस अवसर पर सूर्यकांत नागर, डॉ. अखिलेश राव, श्याम बैरागी, डॉ. मनीषा शर्मा, मुकेश तिवारी, डॉ. दीप्ति गुप्ता, त्रिपुरारीलाल शर्मा, जी. डी. अग्रवाल ने भी विचार व्यक्त किए। कार्यक्रम में सर्वश्री प्रदीप नवीन, उमेश पारेख, सदाशिव कौतुक, अनिल भोजे, गिरेंद्रसिंह भदौरिया, मोहन रावल, डॉ. पुष्पेंद्र दुबे, रामचन्द्र अवस्थी, लक्ष्मीनारायण उग्र, सुरेश कुलकर्णी, रजनी रमण शर्मा, डॉ. सुरेश पटेल, सहित अनेक गणमान्य साहित्यकार

उपस्थित थे। डॉ जवाहर करनावत भोपाल विशेष रूप से उपस्थित थे। संचालन डॉ. पद्मा सिंह ने किया। चित्र उसी अवसर का।

–**हरेराम वाजपेयी**, प्रचार मंत्री

## 'वीणा' की सदस्यता हेतु सूचना

- एक प्रति : 50 रु. (पचास रुपये)
- वार्षिक : 500 रु. (पांच सौ रुपये)
- द्विवार्षिक : 1000 रु. (एक हजार रुपये)
- आजीवन : 5000 रु. (पांच हजार रुपये)
- संस्थाओं के लिए : 5500 रुपये (पांच हजार पांच सौ रुपये)
- विदेशों में वार्षिक : 50 डॉलर (पचास डॉलर)
- खाताधारक का नाम – **'वीणा मासिक पत्रिका'**
- बैंक का नाम – भारतीय स्टेट बैंक, विश्वविद्यालय परिसर शाखा, आरएनटी मार्ग, इन्दौर (म.प्र.) 452001
- बैंक खाता क्रमांक – **53004150936**
- IFSC Code : SBIN0030127

वार्षिक नवीनीकरण और सदस्यता ग्रहण करने हेतु उपर्युक्तानुसार शुल्क प्रेषित करें। खाते में जमा की गई राशि का विवरण पूर्ण डाक पते सहित वीणा कार्यालय को अवश्य भेजें या veenamasikpatrika@yahoo.co.in पर मेल कर सूचित करें।

- रजिस्टर्ड डाक से वीणा प्राप्त करने के लिए रुपये 500/–वार्षिक, अलग से देय।
- सम्पर्क : श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, 11, रवीन्द्रनाथ टैगोर मार्ग, इन्दौर (म.प्र.) 452001 दूरभाष 0731–4998871

ईमेल : veenamasikpatrika@yahoo.co.in
इंटरनेट पर वीणा www.veenapatrika.com ■